अध्याय – 9

कृषि रसायन एवं पर्यावरण प्रदूषण
(Agrochemicals and Environmental Pollution)

कृषि रसायन (Agrochemicals)–

भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति (सन् 1965–67) के आगमन के बाद देश खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया। हरित क्रान्ति की सफलता में कृषि रसायनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तब से लगातार कृषि रसायनों के उपयोग से फसल सुरक्षा के अतिरिक्त फसल उत्पादन में निरन्तर बढ़ोतरी हुई है।

परिभाषा (Definition)–

कृषि रसायन वे पदार्थ होते हैं जो रासायनिक या जैव रसायन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप निर्मित होते हैं तथा फसलों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व व सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

दूसरे शब्दों में कृषि रसायन ऐसे उत्पादों की श्रेणी है जिसमें सभी पीड़कनाशी रसायन एवं रासायनिक उर्वरक शामिल होते हैं जो फसलों का उत्पादन (Crop Production) बढ़ाने एवं फसल सुरक्षा (Crop Protection) प्रदान करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

यद्यपि ये सभी रसायन कृषकों के लिए अत्यन्त मंहगे होते हैं फिर भी बेहतर उत्पादन हेतु इनका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा हैं। यदि इनका उपयोग सही मात्रा एवं उपर्युक्त विधि द्वारा किया जाए तो ये किसानों के लिए अच्छी आय के अवसर प्रदान कर सकते हैं। कृषि रसायनों का मृदा सुधारक (Soil amendments) एवं वृद्धि नियामक (Growth regulators) के रूप में भी महत्वपूर्ण योगदान है।

कृषि रसायनों के प्रकार (Typs of Agrochemicals)

ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) रासायनिक उर्वरक (Chemical Fertilizers)–

खेती की पैदावार बढ़ाने में रासायनिक उर्वरकों की प्रमुख भूमिका है। भारत में हरित क्रान्ति की सफलता काफी हद तक उर्वरकों के इस्तेमाल पर निर्भर रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. नौरमैन ई. बोरलौग के अनुसार 'अगर अधिक पैदावार देने वाली किस्में हरित क्रान्ति की उत्प्रेरक थी तो रासायनिक उर्वरकों ने ईंधन के रूप में उसे गति प्रदान करने वाली शक्ति का काम किया।' आज उर्वरक गहन खेती का अपरिहार्य निवेश बन गये हैं। चूंकि भारत दूसरी 'सुपर हरित क्रान्ति' करने का प्रयास कर रहा है। अतः उर्वरकों की खपत में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही हैं।

भारत में उर्वरक उत्पादन 1906 में सिंगल सुपर फॉस्फेट के साथ शुरु हुआ। सन् 1947 में आजादी मिलने के समय देश में अमोनियम सल्फेट एक मात्र नाइट्रोजन उर्वरक के रूप में जाना जाता था। सन् 1956 में यूरिया और 1967 में डाई–अमोनियम फॉस्फेट का उत्पादन शरु होने के साथ ही देश में उर्वरकों के इस्तेमाल में क्रान्ति आ गई। सन् 1951–52 में प्रति हैक्टर उर्वरक (N + P + K) खपत बहुत कम (लगभग 0.5 किग्रा./है.) थी जो बढ़कर सन् 2016–17 में 158 किग्रा. प्रति हैक्टर हो गई। किन्तु सन् 2015 के विश्व आंकडों के अनुसार इजिप्ट (389 किग्रा.), चीन (420 किग्रा.), कोरिया (296 किग्रा.), बांग्लादेश (278 किग्रा.) जैसे देशों के मुकाबले भारत में उर्वरकों की खपत बहुत कम है।

विश्व में भारत का सन् 2014–15 के आंकड़े के अनुसार उर्वरक उत्पादन (N + P) में चीन तथा यू.एस.ए. के बाद तीसरा स्थान है और उर्वरक खपत (N + P + K) में विश्व में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है। नाइट्रोजन के विश्व उत्पादन एवं खपत में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है। फॉस्फोरस के

AGRIGYAN.IN

खपत में भारत का विश्व में चीन के बाद द्वितीय स्थान है और पोटैशियम की खपत में भारत का चीन, ब्राजील और यू.एस.ए. के बाद विश्व में चतुर्थ स्थान है। उर्वरकों की खपत में तेजी से बढ़ोतरी होने से विभिन्न मानवीय गतिविधियों के कारण होने वाले पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जागरुकता से उर्वरकों के इस्तेमाल के प्रति संदेह पैदा हो गया है और इस बात पर चिंता प्रकट की जा रही है कि रासायनिक उर्वरकों पर अत्यधिक निर्भरता से पर्यावरण को अस्थायी क्षति पहुंच सकती है। उपयोग में लाये गये उर्वरकों का कुछ भाग निचली सतह में जाकर भू–गर्भीय जल में मिल जाता है या मिट्टी के कटाव के साथ नाले, नदी और तालाब में मिल जाता है।

जलाशयों के जल में पोषक तत्वों की मात्रा में बढ़ोतरी से इनमें शैवाल की वृद्धि ज्यादा होती है, जिससे जलाशय सुपोषी हो जाते हैं और जल में कार्बनिक कार्बन की मात्रा ज्यादा हो जाती है। इसके फलस्वरूप जैव रासायनिक ऑक्सीजन की मांग ज्यादा हो जाती है और अवायवीय अवस्था बन सकती है। इस तरह से बनी अवायवीय अवस्था से जल में उपस्थित पौधों एवं मछलियों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इनकी मृत्यु दर बढ़ जाती है।

उर्वरक नाइट्रोजन के निक्षालन खासतौर से नाइट्रेट नाइट्रोजन से जलाशयों का प्रदूषण होता है और जलाशयों के सुपोषी होने के साथ–साथ इसका दुष्प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर भी होता है। अगर पीने के जल में नाइट्रेट की मात्रा 45 पी.पी.एम. (या नाइट्रेट नाइट्रोजन की मात्रा 10 पी.पी.एम.) से ज्यादा है। जल में विलेयशील उर्वरकों के उपयोग से या इनके उपयोग के तुरन्त बाद सिंचाई करने से या अधिक वर्षा से भी उर्वरक नाइट्रोजन का निक्षालन ज्यादा होता है खासतौर से हल्की रेतीली मृदाओं में जिनकी जलधारण क्षमता एवं धनायन विनिमय क्षमता कम होती है।

नाइट्रोजन की तरह फॉस्फोरस गतिशील तत्व नहीं है एवं मृदा में स्थिर हो जाता है, परन्तु मृदाएं जिनमें कार्बनिक कार्बन की मात्रा ज्यादा और एल्युमिनियम और लोहा की मात्रा कम होती है, फॉस्फोरस की गतिशीलता ज्यादा होती है और इसका निक्षालन हो सकता है। शहरी एवं औद्योगिक अपशिष्ट के सान्निक्षेपण तथा मृदा के अपरदन के कारण भी जलाशयों में फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ सकती है।

जल में फॉस्फोरस की मात्रा थोड़ी–सी बढ़ोतरी ही जलाशय को सुपोषी बनाने के लिए काफी है, क्योंकि इसके फलस्वरूप शैवाल, जल के पौधों इत्यादि में वृद्धि होती है। अधिकांश फसलों द्वारा नाइट्रोजन 30–50 प्रतिशत, फॉस्फोरस 15–20 प्रतिशत, पोटैशियम 70–80 प्रतिशत, जिंक 2–5 प्रतिशत, लोहा 1–2 प्रतिशत तथा तांबा 1–2 प्रतिशत तक ही मात्रा का उपयोग होता है। उर्वरकों का बाकी हिस्सा मृदा में घुल कर नीचे की ओर चला जाता है अथवा उसका वाष्पीकरण या डिनाइटीकरण होता है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि भारत में पोषक सुरक्षा एवं कृषि पैदावार की स्थिति को देखते हुए उर्वरकों के इस्तेमाल के प्रभावों को समझा जाए और उनका सही–सही मूल्यांकन किया जाए।

(2) पीड़कनाशी (Pesticides)–

भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति के उदय के बाद फसल उत्पादन बढ़ाने तथा फसलों की कीट–पतंगों, रोगों, खरपतवारों से सुरक्षा करने में पीड़कनाशियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत विश्व में पीड़कनाशियों का तृतीय सबसे बड़ा उपभोक्ता (Consumer) है तथा दक्षिण एशिया के देशों में सबसे बड़ा उपभोक्ता है। साधारण पीड़कनाशी (Basic Pesticides) बनाने में भारत चीन के बाद एशिया का दूसरा सबसे बड़ा निर्माण करने वाला तथा विश्व में भारत का 12वां स्थान है। भारत कीटनाशकों का विश्व में 13वां सबसे बड़ा निर्यातक देश है जो ब्राजील, यू.एस.ए., फ्रांस और नीदरलैण्ड जैसे देशों को कीटनाशकों का निर्यात करता है।

कई दशकों से भारत में पीड़कनाशियों की खपत कई गुना बढ़ी है जो 1953–54 में 154 मैट्रिक टन से बढ़कर सन् 2009–2010 में 85000 मैट्रिक टन हो गई। भारत में प्रति हैक्टर पीड़कनाशियों की खपत विश्व में सबसे कम है, जो हाल में 0.6 किग्रा प्रति हैक्टर है। विश्व के अन्य देशों जैसे– यू.के. (5.7 किग्रा. प्रति हैक्टर), फ्रांस (5–6 किग्रा. प्रति हैक्टर), कोरिया (7 किग्रा. प्रति हैक्टर), यू.एस.ए. (7 किग्रा. प्रति हैक्टर), जापान (12 किग्रा. प्रति हैक्टर), चीन (13 किग्रा. प्रति हैक्टर) तथा ताईबान (17 किग्रा. प्रति हैक्टर) खपत हैं।

हमारे देश में सबसे ज्यादा कीटनाशकों की खपत आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा पंजाब जिनमें कुल खपत का 45 प्रतिशत भाग उपयोग होता है। फसलों में सबसे अधिक कीटनाशक कपास, धान, फल एवं सब्जियों में प्रयोग होते हैं।

कीटनाशी अधिनियम 1968 के अनुसार भारत में लगभग 155 पीड़कनाशी पंजीकृत हुए हैं जिनमें 57 कीटनाशक, 44 फफूंदनाशक, 33 खरपतवारनाशी, 7 मूषकनाशी, 4 पादप वृद्धि नियामक, 4 धूर्मण (फ्युमिगेन्ट्स), 3 अष्टपदनाशी, 1 मोलस्कीसाइड्स, 1 सूत्रकृमिनाशी, 1 मृदा निर्जमीकारक (Soil Strilent)।

AGRIGYAN.IN

हमारे देश में कुल पीड़कनाशियों में 60 प्रतिशत कीटनाशक, 18 प्रतिशत कवकनाशक, 16 प्रतिशत खरपतवारनाशी, 3 प्रतिशत जैवनाशी तथा 3 प्रतिशत अन्य दूसरे रसायन कृषि में प्रयुक्त होते हैं।

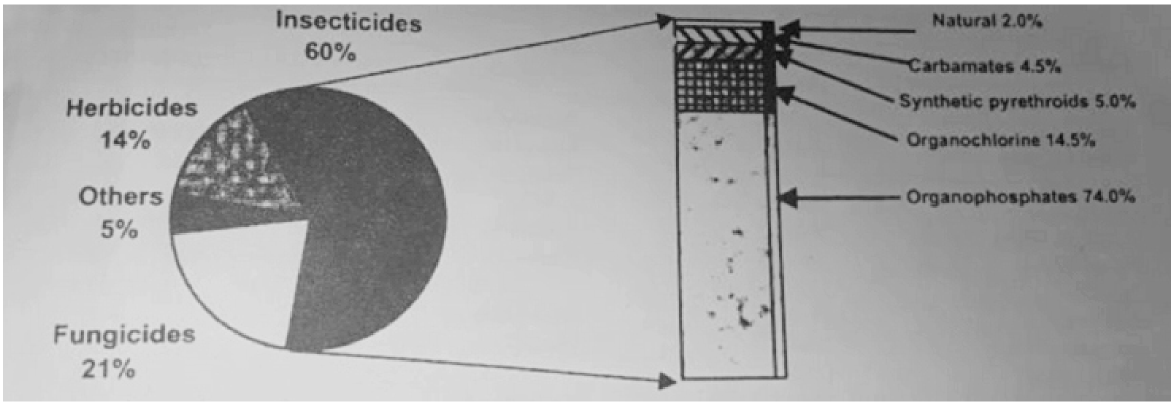

चित्र–भारत में विभिन्न पीड़कनाशियों की खपत

पीड़कनाशी की परिभाषा (Definition of pesticides)

वे रासायनिक यौगिक जो पादप कीट एवं रोगों को नियंत्रित करने, खरपतवार उन्मूलन, कृषि उत्पादों को नष्ट करने वाले कीटों एवं सूक्ष्म जीवों को मारने तथा परजीवियों तथा मनुष्य एवं जानवरों के खतरनाक रोगाणुओं के नियंत्रण में प्रयोग किये जाते हैं, पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड्स) कहलाते हैं।

पीड़कनाशी का वर्गीकरण नियंत्रण हेतु प्रयोग के आधार पर निम्न प्रकार किया जाता है–

1. कीटनाशी (Insecticides) : कीटों को मारने हेतु
2. कवकनाशी (Fungicides) : फंजाई को नष्ट करने के लिए
3. खरपतवार नाशी (Weedicides) : खरपतवारों को नष्ट करने के लिए
4. सूत्रकृमि नाशी (Nematicides) : सूत्रकृमियों के लिए
5. अष्टपद नाशी (Acaricides) : माइट्स आदि को मारने के लिए
6. मूषकनाशी (Rodenticides) : चूहों को मारने हेतु
7. एल्गीसाइड्स (Algicides) : एल्गी को नष्ट करने के लिए
8. मोलस्कीसाइड्स (Molluscicides) : मोलस्क समुदाय के लिए
9. बैक्टीरीसाइड्स (Bacteriocides) : बैक्टीरिया नष्ट करने के लिए।

रासायनिक कीट–नाशक (Insecticides) –

प्रारम्भ में अकार्बनिक कीटनाशी यथा लेड आरसीनेट, पेरिस ग्रीन, कैल्शियम आरसीनेट का उपयोग कीट नियंत्रण के लिए किया जाने लगा। लेकिन ये कीटनाशी पौधों पर भी घातक प्रभाव छोड़ने लगे। फिर वानस्पतिक कीटनाशी यथा निकोटीन, रोटीनौन, पायरैथ्रम आदि का उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आविष्कार हुआ लेकिन इन कीटनाशकों की उपलब्धता आसानी से नहीं होती तथा इनका प्रभाव एक–दो दिन तक ही रहता था। अतः आवश्यकता ऐसे कीटनाशियों की होने लगी जो कीटों को स्थायी रूप से नष्ट करें और आसानी से उपलब्ध हो जाए।

कीटनाशियों का वास्तविक युग सन् 1939 में डॉ. पॉल मुलर द्वारा डी.डी.टी. कीटनाशी की खोज होने पर प्रारम्भ हुआ। इसी समय से रासायनिक कीट नियंत्रण प्रारम्भ हो गया। डॉ. पाल मुलर को इस खोज पर सन् 1948 में नोबेल पुरस्कार भी मिला। कीट–नाशक निम्न वर्गों में विभाजित किये जाते हैं :–

1. क्लोरीनेटिड हाइड्रोकार्बन्स (Chlorinated hydrocarbons)– ये अत्यधिक विषैले होते हैं, इनका प्रभाव काफी समय तक रहता है। ये स्पर्श तथा आन्तरिक या उदर विष दोनों की ही तरह काम करते हैं। ये जल में अविलेय तथा पैट्रोलियम आदि में विलेय होते हैं। ये स्तनधारियों के लिए विषैले होते हैं। डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन, हैप्टाक्लोर, क्लोरडेन इत्यादि ये कीटनाशी पूर्व में भूमिगत कीट जैसे दीपक, कटुआ लट, सफेद लट के लिए प्रयोग में लिये जाते थे। ये अत्यंत कारगर थे। इनमें से कतिपय जैसे बी.एच.सी., हैप्टाक्लोर आदि पौधों पर छिड़के जाते थे। लेकिन इन कीटनाशियों के अवशेष खाद्यान्नों में पाये जाने लगे। इनसे भूमि प्रदूषित होने लगी तो भारत सरकार ने इन पर रोक लगा दी। इनमें से कतिपय जैसे एन्डोसल्फान का वेधक कीटों पर प्रयोग अनेक वर्षों तक होता

AGRIGYAN.IN

रहा है। लिण्डेन तो अभी भी फसलों पर कीट नियंत्रण हेतु काम लिया जाता है।

2. आरगैनो फॉस्फेट कीटनाशी (Organo phosphate) : पैराथियोन, मिथाइल पैराथियोन, ईथिऑन, डाइमैथेएट, डोमैटोन, फॉस्फामीडोन, फोरेट इत्यादि कीटनाशी कीट नियंत्रण में अत्यंत कारगर हैं। लेकिन इनमें से अधिकतर अत्यंत विषैले हैं। अतः कुछ पर भारत सरकार ने प्रतिबंध लगा रखा है। मैलाथिपोन, ऐसीफेट आदि इस समुदाय के कीटनाशी है जो आज भी फसलों पर, खासतौर से सब्जियों एवं फलों वाली फसलों पर प्रयोग किये जाते हैं। इनकी कीट मारक क्षमता ठीक है, इनके अवशेष शीघ्र अवघटित हो जाते हैं और मानव पशुओं के लिए तुलनात्मक रूप से कम विषैले हैं।

3. कार्वामेट कीटनाशी (Carbamate) : कार्वारिल, एल्डीकार्व, कार्वो फ्यूरान इस श्रेणी के कीटनाशक हैं। इनमें से कार्वारिल का प्रयोग विभिन्न फसलों पर किया जाता है। कार्वोफ्यूरान भी भूमिगत कीट दीमक आदि के लिए एवं बीजोपचार में काम लिया जाता है। एल्डीकार्व बहुत घातक है, अतः इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4. सिंथेटिक पायरैथ्रोएड (Synthetic Phyrethroides) : उदाहरणार्थ साइपरमैथ्रिन, परमैथ्रिन, डेल्टामैथ्रिन तथा फनवलेरट आदि। ये कीटनाशी कीड़ों के लिए बहुत कम मात्रा में भी अत्यन्त घातक होते हैं, लेकिन मानव के लिए कम घातक हैं और इनके अवशेष शीघ्र अवघटित हो जाते हैं। अतः इनका प्रयोग छेदक कीड़ों के लिए खासतौर से किया जाता है। लेकिन इनके बार बार प्रयोग से अन्य छोटे छोटे कीट जैसे माहू, सफेद मक्खी, हरा तैला आदि की बढ़ोतरी हो जाती है। अतः सिर्फ एक या दो बार ही फसलों पर छिड़काव करें।

(3) जैविक कीटनाशी (Bio Pesticides)–

जैविक कीटनाशक विभिन्न प्रकार के जीवों जैसे कीटों, फफूंदी, जीवाणुओं, विषाणुओं तथा वनस्पतियों पर आधारित उत्पादन हैं जो फसलों, सब्जियों तथा फलों को कीटों और रोगों से सुरक्षित कर उत्पादन बढ़ाने में सहयोग करते हैं। यह 20–30 दिन के अंदर भूमि और जल से मिलकर जैविक क्रिया का अंग बन जाते हैं तो वहीं स्वास्थ्य और पर्यावरण को भी कोई हानि नहीं पहुंचाते हैं। उदाहरणार्थ– नीम कीटनाशी, ट्राइकोकार्ड (ट्राइकोग्रामा), न्यूक्लियर पॉली हाइड्रोसिस वायरस, बैसिलस थुर्रेजिएसिंस, फेरोमोन ट्रेप (गंधपाश), ट्राइकोडरमा, व्यूवेरिया बैसियाना, मेटाराइजिम एनीसोपीली। जैविक कीटनाशी पर्यावरण के लिए लाभदायक (Eco Freindly), प्रयोग करने में आसान तथा रासायनिक पीड़कनाशियों की अपेक्षा कम मात्रा में प्रयुक्त होकर फसलों में अधिक उपयोगी होते हैं। इनका प्रयोग कपास, धान, मूंगफली, दाल, गेहूँ, गन्ना एवं फल व सब्जियों में किया जाता है।

जैविक कीटनाशकों से लाभ (Advantages of bio-pesticides)–

- जीवों एवं वनस्पतियों पर आधारित उत्पाद होने के कारण जैविक कीटनाशक लगभग एक माह में भूमि में मिलकर अपघटित हो जाते हैं तथा इनका कोई अंश अवशेष नहीं रहता, यही कारण है कि इन्हें पारिस्थितकीय मित्र के रूप में जाना जाता है।
- जैविक कीटनाशक केवल लक्षित कीटों एवं बीमारियों को मारते हैं, जबकि रासायनिक कीटनाशकों से मित्र कीट भी नष्ट हो जो हैं।
- जैविक कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों/व्याधियों में सहनशीलता एवं प्रतिरोध नहीं उत्पन्न होता जबकि अनेक रसायन कीटनाशकों के प्रयोग से कीटों में प्रतिरोध क्षमता उत्पन्न होती जा रही है, जिनके कारण उनका प्रयोग अनुपयोगी होता जा रहा है।
- जैविक कीटनाशकों के प्रयोग के तुरन्त बाद फलियों, फलों, सब्जियों की कटाई पर प्रयोग में लाया जा सकता है, जबकि रासायनिक कीटनाशकों के अवशिष्ट प्रभाव को कम करने के लिए कुछ दिनों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
- जैविक कीटनाशकों के सुरक्षित, हानिरहित तथा पारिस्थितकीय मित्र होने के कारण विश्व में इनके प्रयोग से उत्पादित चाय, कपास, फल, सब्जियों, तम्बाकू तथा खाद्यान्नों, दलहन एवं तिलहन की मांग एवं मूल्यों में वृद्धि हो रही है, जिसका परिणाम यह है कि कृषकों को उनके उत्पादों का अधिक मूल्य मिल रहा है।
- जैविक कीटानाशकों के विषहीन एवं हानिरहित होने के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में इनके प्रयोग से आत्महत्या की सम्भावना शून्य हो गयी है, जबकि कीटनाशी रसायनों से अनेक आत्महत्याएं हो रही हैं।
- जैविक कीटनाशक पर्यावरण, मनुष्य एवं पशुओं के लिए सुरक्षित तथा हानिरहित हैं। इनके प्रयोग से जैविक खेती को बढ़ावा मिलता है जो पर्यावरण एवं परिस्थितकीय का संतुलन बनाये रखने में सहायक है।

(4) पादप वृद्धि नियामक (Plant Growth Regulator)–

ये वह कृषि रसायन होते हैं जो पौधों की वृद्धि की प्रक्रियाओं (Plant Growth Proceses) को नियंत्रित

AGRIGYAN.IN

(Controling) अथवा बदलने (Modyfing) के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इनका प्रयोग कपास, धान, सब्जियों व फलों में किया जाता हैं। उदाहरणार्थ– साइटोकायनिन्स (Cytokinins), इथायलिन (Ethylene), इंडोल–3–एसिडिक–एसिड (Indol-3 acetic acid (IAA)), एब्सीसिक एसिड (Abscisic acid (ABA)), ऑक्जीन्स (Auxins), गिब्रिलियन्स (Gibberellins), जायटिन (Zeatin), पेलारगॉनिक एसिड (Pelargonic acid)।

(5) कीट वृद्धि नियामक (Insect Growth Regulator)–

ये वे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कीड़ों के जीवनचक्र को प्रभावित करते हैं। ये हानिकारक कीटों को नियंत्रण करने के लिए कीटनाशक के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। लाभदायक कीड़ों को बहुत कम मात्रा में हानि पहुँचाते हैं तथा उनके साथ मित्रवर व्यवहार करते हैं। पर्यावरण प्रदूषण को बहुत कम मात्रा में नुकसान पहुँचाते हैं। यह जैविक नियंत्रण के साथ बहुत अधिक प्रभावी होते हैं। उदाहरणार्थ– बूप्रोफेजिन (Buprofezin), क्लोरफ्लूआजिरोन (Chlorfluaziron), टेफ्लूबैनर्जोन (Teflubenzuron), पायरीप्रोक्सीफेन (Pyriproxefen), फिनोक्सीकार्ब (Fenoxycarb), नोवेल्यूरॉन (Novaluron)।

(6) वनस्पति आधारित कीटनाशक (Botanical Pesticides)–

वनस्पति आधारित कीटनाशकों में विभिन्न सान्द्रता वाले नीम के उत्पाद उपलब्ध है। इनका प्रयोग मुख्यतः सफेद मक्खी, ग्रास होपर, शूट फ्लाई व लट कीटों के लिए किया जाता है। नीम की निंबोली के 5 प्रतिशत पानी में निकाले गए सत (नीम सीड कर्नल एक्सट्रेक्ट) का छिड़काव चने की हरी लट व अन्य अनेकों पत्तियाँ कुतरने वाले व सफेद मक्खी आदि कीटों के लिए कारगर है। महुआ, करंज, तिल, सरसों आदि वनस्पति तेलों का प्रयोग कोमल तने के कीटों की रोकथाम व संग्रहित खाद्यान्नों की सुरक्षा के लिए होता है। वनस्पति आधारित अन्य कीटनाशकों में क्राईसेन्थेमम से प्राप्त बिना सिर्नजिस्ट मिला पाईरिथ्रम, रोटीनान, सेबाडेला, तम्बाकू की पत्तियों (निकोटिन), लहुसन आदि से प्राप्त तत्व नाशकीटों की प्रभावी रोकथाम के लिए प्रयुक्त होते हैं। नीम से बना हुआ, Azadirachtin वनस्पति कीटनाशक काफी प्रचलित एवं लाभकारी है।

पीड़कनाशियों का मृदा में व्यवहार (Behaviour of pesticides in soil)–

विभिन्न प्रकार के पेस्टीसाइड्स का संगठन अलग–अलग होने के कारण उनका मृदा में व्यवहार भी भिन्न होता है।

(1) वाष्पीकृत (Volatility) : कुछ पेस्टीसाइड्स प्रयोग किये जाने के बाद वाष्प रूप में परिवर्तित होकर वायुमण्डल में फैल जाते हैं या मृदा छिद्रों में प्रवेश कर जाते हैं जिससे वे अपनी वांछनीय क्रिया को पूरा करते हैं जैसे, डी.डी.टी. मैथिल ब्रोमाइड आदि।

(2) अधिशोषण (Adsorption) : कुछ पेस्टीसाइड्स में क्रियाशील समूह जैसे : $-OH$, $-NH_2$, $-NHR$, $-CONH_2$, $-COOR$, $-NR_3$ की उपस्थिति के कारण मृदा में अधिशोषित हो जाते हैं।

मृदा में ह्यूमस एवं क्ले की उपस्थिति के कारण क्रियाशील समूह अधिशोषण की क्रिया को पूरा करने में समर्थ हो जाते हैं। क्ले पर अधिशोषित होने से पेस्टीसाइड्स की जीवनाशक क्रिया में बाधा पहुँचती है परन्तु क्ले से अलग होते ही ये पुनः क्रियाशील हो जाते हैं।

(3) निक्षालन (Leaching) : पानी के साथ पेस्टीसाइड्स मृदा में नीचे की ओर रिसकर प्रवेश करते हैं। यह रिसाव की क्रिया मृदा में पेस्टीसाइड्स कम रिसते हैं। हल्की प्रकार की मृदा में रिसाव अधिक होता है खरपतवार नाशक पदार्थ कीटनाशक एवं फंजाईनाशक से अधिक रिसते है।

(4) रासायनिक क्रिया (Chemical Reaction) : मृदा के सम्पर्क में आने के बाद पेस्टीसाइड्स में रासायनिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। डी.डी.टी. एवं ट्राइजिन्स सूर्य की रोशनी के प्रभाव से परिवर्तित होते हैं। अम्लीय अवस्था में पेस्टीसाइड्स पहले सिलीकेट क्ले कलिल पर अधिशोषित होते हैं, फिर जलयोजित होकर परिवर्तित होते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन एट्रजिन, मैलाथियान में पाया गया है।

(5) सूक्ष्म जीव–मैटाबोलिज्म (Microbial Metabolism) : मृदा में पेस्टीसाइड्स का जैव–रासायनिक विधि से परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन पेस्टीसाइड्स में $-OH$, $-COO-$, $-NH_2$ एवं NO_2 समूहों की उपस्थिति के कारण होता है। डी.डी.टी. एवं एल्ड्रिन में परिवर्तन इसी श्रेणी के हैं, परन्तु ये परिवर्तन जीवाणुओं द्वारा तीव्रता से होता है।

(6) स्थायित्व (Persistance) : संगठन एवं प्रकृति के अनुसार पेस्टीसाइड्स के परिवर्तन में मृदा में समय लगता है। खरपतवार नाशक 2–4D मृदा में 2 से 4 सप्ताह तक बनी रहती है जबकि डी.डी.टी. मृदा में 3 से 15 वर्ष या और भी अधिक समय तक बनी रह सकती है। फसलों को उगाने से, रिसाव द्वारा एवं कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के द्वारा पेस्टीसाइड्स का स्तर धीरे–धीरे मृदा में कम होता रहता है। अधिक समय तक विषैले पेस्टीसाइड्स के प्रभाव जीवधारियों के लिए भी घातक होते हैं।

AGRIGYAN.IN

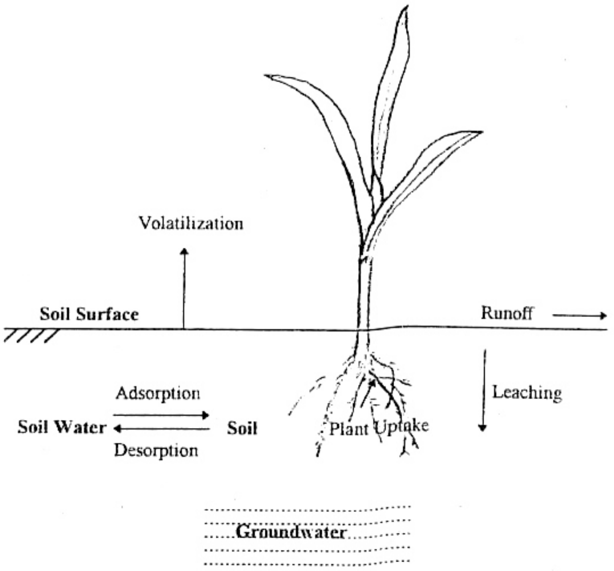

चित्र–मृदा में कीटनाशकों का व्यवहार

भारत में निम्न 27 पीड़कनाशियों के निर्माण, आयात एवं प्रयोग पर प्रतिबंध (27 Pesticides banned for manufacturer, Import & Use) –

1. एल्ड्रिन 2. बैंनजीन हैक्साक्लोराइड 3. कैल्शियम साइनाइड 4. क्लोरढान 5. कॉपर ऐसिटोआसीनेट 6. ब्रोमोक्लोरोप्रोपेन 7. इन्ड्रिन 8. ईथायल मर्करी क्लोराइड 9. ईथायल पैराथियोन 10. हैप्टाक्लोर 11. मैनाजोन 12. नाइट्रोफेन 13. पैराक्यूट डाई मिथायल सल्फेट 14. पेन्ट्राक्लोरो नाइट्रो बेन्जीन 15. पेन्ट्राक्लोरो फिनोल 16. फिनायल मर्करी ऐसिटेट 17. सोडियम मिथैन आर्सोनेट 18. ट्रेटाडीफोन 19. टोक्सासीन 20. एल्डीकार्व 21. क्लोरोबैन्जीलेट 22. डाइएल्ड्रिन 23. मैलिक हाइड्राजिड 24. इथालिन डाइब्रोमाइड 25. टी.सी.ए. 26. मेटोऑक्सूरोन 27. क्लोरोफेनविनफॉस।

वे पीड़कनाशी जिनका प्रयोग भारत में नियंत्रित कर दिया गया हैं (Pesticides Restricted for Use in India)–

1. एल्यूमिनियम फॉस्फाइड 2. डी.डी.टी. 3. लिण्डेन 4. मिथाइल ब्रोमाइड 5. मिथाइल पैराथियोन 6. सोडियम साइनाइड 7. मिथोक्सी इथायल मर्क्यूरिक क्लोराइड 8. मोनोक्रोटोफास 9. इण्डोसल्फान 10. फिनाइटोथ्रायोन 11. डाइजीनोन 12. फेनथ्रायोन 13 डायजोमेट

–स्रोत : निदेशालय, पादप संरक्षण एवं भण्डारण, फरीदाबाद

पर्यावरण (Environment)

पर्यावरण शब्द का तात्पर्य भूतल के समस्त भौतिक प्रभावों, जैसे–ताप, जल, वायु पदार्थों के गठन की विभिन्नताओं तथा जैविक से है। मृदा, पहाड़, जल, स्थल, वायु इत्यादि के अतरिक्त दूसरे समस्त जीव भी पर्यावरण के अंग होते हैं। पर्यावरण जैव जगत का नियामक है जिसने पृथ्वी को जीवित जगत का गौरव प्रदान किया है। स्पष्ट है कि पृथ्वी पर व्याप्त पर्यावरण प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। कोई भी जीव अपने पर्यावरण से अलग जीवन–यापन नहीं कर सकता। समस्त जीवों को उस स्थान की परिस्थितियों के अनुसार अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता है जहाँ पर वह पाया जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions) :

प्रसिद्ध पर्यावरणविद् हर्ष कोविट्स के अनुसार 'पर्यावरण सम्पूर्ण बाह्य परिस्थितियों और उसका जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है, जो जैव जगत् के विकास चक्र का नियामक है।'

जर्मन विद्वान ए. फिटिंग के अनुसार 'जीवन की परिस्थिति के समस्त तत्व या घटक (Factors) मिलकर पर्यावरण अथवा वातावरण कहलाते हैं।'

टांसले के अनुसार, 'प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीव रहते हैं, पर्यावरण है।'

उपरोक्त समस्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण से तात्पर्य जीवों की उनके चारों की उन परिस्थितियों के परिवृत्त से है जो उसे घेरे हुए हैं एवं उनकी सभी प्रकार की क्रियाओं को प्रभावित करता है। इन समस्त परिस्थितियों को उन सम्पूर्ण शक्तियों की नींव समझा जाता है जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव मानव प्रक्रियाओं पर पड़ता है।

पर्यावरण प्रदूषण (Environment Pollution) :

आज पर्यावरण प्रदूषण (Environment Pollution) सम्पूर्ण विश्व की एक गंभीर समस्या है। पर्यावरण प्रदूषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है–

पर्यावरणीय प्रदूषण मनुष्यों की गतिविधियों द्वारा प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न उप–उत्पाद है जो पर्यावरण में पूर्ण रूप से या अधिकतम प्रतिकूल परिवर्तन उत्पन्न करता है, ऊर्जा स्वरूपों, विकिरण स्तरों, रासायनिक तथा भौतिक संगठन तथा जीवों की संख्या में परिवर्तन को प्रभावित करता है।

अतः जिस क्रिया से हवा, जल, मिट्टी एवं वहाँ के संसाधनों के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में किसी अवांछनीय परिवर्तन से जैव जगत् एवं सम्पूर्ण परिवेश पर हानिकारक प्रभाव पहुँचे, उसे प्रदूषण (Pollution) कहते हैं।

प्रदूषक (Pollutant) :

कोई पदार्थ अथवा कारक जो वातावरण को प्रभावित करते हुए मानव के लक्ष्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले, प्रदूषक कहे जाते

AGRIGYAN.IN

हैं। यह दो प्रकार के होते हैं–

1. निम्नीकृत प्रदूषक (Degradable Pollutant)– कार्बनिक पदार्थ, जैसे–कूड़ा–करकट, कचरा, गोबर, मलमूत्र एवं जीवधारियों के अवशेष या उत्सर्जी पदार्थ, सड़–गल कर मृदा उर्वरता बढ़ाने में सहायक होते हैं, परन्तु इनका अपघटन पूर्ण न होने पर दुर्गन्धयुक्त गैसों से वायुमण्डल दूषित होता है और फसलों में दीमक लगने की संभावना बढ़ जाती है।

2. अनिम्नीकृत प्रदूषक (Non-degradable Pollutant)– उद्योगों के अवशिष्ट एवं रासायनिक पदार्थ जिनका कि कम विघटन होता है अथवा विघटन हो ही नहीं पाता, अनिम्नीकृत प्रदूषक की श्रेणी में आते हैं, जैसे–प्लास्टिक पदार्थ, बी.एच.सी., डी.डी.टी., ऐलुमिनियम, आर्सेनिक, सिलिकेट पदार्थ, फाउन्ड्री उद्योग के अवशेष आदि।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार (Kinds of Environmental Pollution)–

पर्यावरण प्रदूषण प्रमुख रूप से प्रकृतिजन्य एवं मानवजन्य कारणों से होता है। कृषि एवं पर्यावरण सम्बन्धों की दृष्टि से इसे निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता हैं– (1) जल प्रदूषण (2) वायु प्रदूषण (3) मृदा प्रदूषण (4) ध्वनि प्रदूषण, (5) रेडियोधर्मी प्रदूषण।

(1) जल प्रदूषण (Water Pollution)– प्राकृतिक संसाधनों में जीवधारियों के अस्तित्व के लिए जल सर्वाधिक आवश्यक तत्व है। जल से ही धरती पर जीवन का निर्वहन होता है, परन्तु दूसरी ओर मानव सभ्यता इसे विकारग्रस्त करके प्रदूषित करने के लिए उत्तरदायी भी है। जल के अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो उनका मौलिक संतुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार जल के प्रदूषित होने की प्रक्रिया या जल में हानिकारक तत्वों की मात्रा का बढ़ना जल प्रदूषण कहलाता है तथा ऐसे पदार्थ जो जल को प्रदूषित करते हैं, जल प्रदूषक कहलाते हैं।

जल प्रदूषण को मुख्यतः मनुष्य द्वारा अपने क्रियाकलापों से उसके प्राकृतिक (भौतिक), रासायनिक और जैविक घटकों में धीरे–धीरे कमी पैदा करने वाले कार्यों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। दूसरी ओर यह चट्टानों के विखण्डन, खनिज पदार्थ, मृदा तलछट, पोषक तत्व, मृत पशुओं, वानस्पतिक पदार्थ एवं सूक्ष्म जीवों के सड़ जल कर धीरे–धीरे क्षय होने से संभव है, जो मृदा अपरदन के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते रहते हैं। जल अवयवों की गुणवत्ता (सतही और भूमिगत) का कम होना पिछले कुछ दशकों से लगातार बढ़ रहा है तथा औद्योगिक और कृषि क्षेत्रों में मानवीय गतिविधियों की वृद्धि से जल प्रदूषण की समस्या अधिक गंभीर हो गई है।

पर्यावरण में प्रदूषणकारी तत्वों को लेकर कुछ वर्षों से विश्वव्यापी चिन्ता व्यक्त की जा रही हैं। मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न प्रदूषणकारी तत्वों द्वारा मानवजाति अथवा पारिस्थितिक जीवन तंत्र पर होने वाले हानिकारक प्रभावों की सूचनाओं के व्यापक प्रसार से प्राप्त होने वाली जानकारी के कारण प्रदूषण चिन्ता उत्पन्न हुई है। जल प्रदूषण जैसी पर्यावरण सम्बन्धी समस्या जल स्रोतों में औद्योगिक इकाईयों द्वारा अनियंत्रित बहिःस्राव के कारण उत्पन्न हुई है, जबकि वायु प्रदूषण जैसी अन्य समस्याएं ऊर्जा उत्पादन करने वाले उद्योगों तथा वाहनों के उत्सर्जन पदार्थों के अपर्याप्त नियंत्रण से सम्बद्ध है।

जल प्रदूषण के मानदण्ड (Valuation of Water Pollution)– जल प्रदूषण के प्रकार और सीमा के लिए निम्नलिखित मानदण्ड सुनिश्चित किये जाते हैं–

1. प्राकृतिक (भौतिक) मानदण्ड– पानी का रंग, गंध, अविलेयता, सघनता (धनत्व) तथा तापमान प्राकृतिक रूप से जल प्रदूषण के बारे में सही जानकारी देते हैं।

2. रासायनिक मानदण्ड– पी–एच, पूरी तरह घुलनशील लवण (टी.डी.एस.) आयनिक साम्य, छोड़े गए सघन तत्व, विलीन ऑक्सीजन (डी.ओ.), अवशिष्ट क्लोरीन, रासायनिक ऑक्सीजन (सी.ओ.सी.), जैविक ऑक्सीजन आवश्यकता, अपचयोपचय सम्भाव्यता, रेडियो सक्रिय पदार्थ, जैव रसायन, जैविक क्रिया विधि को कम एवं ज्यादा करने वाले जैविक पदार्थ, भारी तत्वों सहित धात्विक आयन ऑक्साइड तथा औद्योगिक उप उत्पाद आदि।

3. जैविक मानदण्ड– विभिन्न प्रकार की जैविक क्रियाएं, जीवाणु, शैवाल, प्रोटोजोआ तथा कठोर कवच वाले छोटे–बड़े जीव जन्तु।

जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत (Main Source of Water Pollutants)–

जल प्रदूषण निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक स्रोतों से होता है–

1 निश्चित स्रोत– इस प्रकार के जल प्रदूषक स्रोतों को किसी स्थान विशेष पर तुरन्त पहचाना जा सकता है एवं वे पूर्व परिचित स्रोत होते हैं, जैसे–

- औद्योगिक अपशिष्ट विसर्जन
- शोधन संयंत्र, डेयरी उद्योग एवं चमड़ा उद्योग से स्रावित पदार्थ

AGRIGYAN.IN

- नगर मल व्यसन का रिसाव, संयुक्त मल नल का अधिप्रवाह तथा अपरिष्कृत मल विसर्जन निक्षालन अवक्षेप एवं स्वच्छतापरक भूमि भराव
- वायुवीय अवपात

2. अनिश्चित स्रोत–

- कृषि सिंचाई एवं कृषि कार्य
- पशुधन बहिःस्राव एवं पशु बाड़ों की गतिविधियाँ
- भूमंडलीय जनित प्राकृतिक लवणता एवं वनीकरण
- भूतलीय जल का प्राकृतिक पर्यावरण के माध्यम से बहना
- खनिजों का विलीनीकरण एवं वायुवाहित समुद्री लवण एवं खनन गतिविधियां
- तेल क्षेत्रों से लवण जल का विसर्जन तथा शहरी क्षेत्रों से तेल एवं ग्रीस युक्त प्रवाह
- घरेलू कूड़ा–करकट, निर्माण संबंधी गतिविधियां एवं रेडियो सक्रिय तत्व।

जल प्रदूषक (Water pollutant)–

ऐसे अवांछित तत्व जो जल में मिलकर उसकी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना में परिवर्तन कर देते हैं जल प्रदूषक कहलाते हैं। प्रदूषकों का प्रकार, घनत्व, स्रोत तथा उनकी प्राकृतिक एवं रासायनिक अवस्थाएं चारों ओर के वातावरण के साथ उनकी अभिक्रियाशीलता पर निर्भर करती है। बहुसंख्यक जल प्रदूषकों का वर्गीकरण निम्नांकित श्रेणियों के अन्तर्गत किया जाता है–

(1) जैव प्रदूषक (Biological pollutant) : जैव प्रदूषकों में विघटनशील एवं अविघटनशील दोनों ही प्रकार के उत्पाद सम्मिलित है। जैव प्रदूषकों में पादप पोषक मल, संश्लिष्ट जैविक उत्पाद एवं तेल इत्यादि रोग उत्पादक कारक सम्मिलित है। किसी भी जल संसाधन में पादप एवं सूक्ष्म जैविक समष्टि के रूप में विद्यमान विलीन ऑक्सीजन जलीय जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है तथा पानी में विलय ऑक्सीजन (डी.ओ.) का स्तर 4–6 पीपीएम (प्रति दस लाख) अंश तक रहना चाहिए। जैव प्रदूषण मुख्य रूप से कृषि भूमि में बहने वाले पानी, औषधालयों के जैव कचरे एवं अन्य सड़े–गले अवांछित पदार्थों के शुद्ध जल में मिलने से होता है।

(2) अजैव प्रदूषक (Non-biological pollutant) : इस प्रकार के प्रदूषक तत्वों में अजैव लवण, अघुलनशील और घुलनशील पूर्ण रूप से विभाजित धातु या धात्विक संयोजन, सूक्ष्म मात्रिक तत्व, जैव अंशयुक्त धातुओं का मिश्रण, जैव–धात्विक आमिश्र एवं खनिज अम्ल इत्यादि सम्मिलित हैं।

(क) भारी एवं सूक्ष्मधातु (Heavy and Micro Metals)–

अन्य धातुओं की अपेक्षा सीसा, पारा और कैडमियम जल में उपस्थित तीन प्रमुख प्रदूषक तत्व होते हैं। यद्यपि कालान्तर में जब अनेक धातुओं का उपयोग बढ़ने से उनकी विषाक्तता का पता चला तो भारी धातु प्रदूषण को ही सूक्ष्म मात्रा (1 mg/1) से अधिक होने पर कई खतरनाक रोग उत्पन्न होने के प्रमाण मिले हैं। सीसा मुख्यतः गुर्दे, यकृत तथा मस्तिष्क की कोशिकाओं को अधिक प्रभावित करता है। मोटर वाहनों के धुएं से टेटाइथाइल लेड का वायुमण्डल में रिसाव अधिक होने की वजह से सीसे का भूपटल पर जमाव वर्षा एवं असंघटित बैटरी उद्योग के द्वारा शुद्ध जल में मिल जाता है।

पारा सामान्यतः प्राकृतिक जल में नहीं होता है लेकिन क्लोरीन एवं सोडियम हाइड्रॉक्साइड बनाने वाले संयंत्रों से रिसने वाले बहिःस्राव द्वारा पारा नदियों एवं जलाशयों में पहुंच कर उनको प्रदूषित कर देता है। जल में एक विशेष प्रकार की शैवाल होती है जो पारे को मिथाइल मरकरी में बदल देती है तथा शैवाल भक्षी मछलियों के माध्यम से मछली का सेवन करने वाले लोगों के शरीर में पारा पहुंच कर अनेक रोग उत्पन्न करता है।

(ख) अकार्बनिक रसायन (Inorganic Chemicals) –

प्राकृतिक जल में मौजूद अकार्बनिक यौगिकों के दो भाग होते हैं : धनायन एवं ऋणायन। धनायन में मुख्यतः धातुएं एवं ऋणायन में क्लोराइड (Cl^{-1}), फ्लोराइड (F^{-}) एवं सल्फेट (SO_4^{-}) जैसी धातुएं/अधातुएं होती हैं।

फ्लोराइड मानव के लिए स्वास्थ्यवर्धक माना गया है, परन्तु लगातार फ्लोराइडयुक्त पानी का सेवन करने पर एक सीमा के बाद यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी हो सकता है। पानी में 1.5 मिग्रा./ली. से अधिक फ्लोराइड सान्द्रता होने पर फ्लोरोसिस नामक बीमारी हो जाती है। फ्लोरोसिस से पीठ का झुक जाना एवं हड्डियों का कमजोर हो जाना आम बात है तथा इनसे व्यक्ति जवानी में ही बूढ़ा दिखाई देने लगता है।

(ग) नाइट्रेट (Nitrate)–

नाइट्रेट पौधों के लिए लाभदायक होता है तथा यह अल्प मात्रा में जल में भी पाया जाता है। कृषि कार्यों में अंधाधुंध रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग एवं शहरी सीवेज लाइनों से निकलने वाले अनियोजित पानी से जल में नाइट्रेट की मात्रा दिनों–दिन बढ़ती जा रही हैं। जल में नाइट्रेट की मात्रा के बढ़ने पर वह अनाक्सीकारक परिस्थिति में नाइट्राइट में बदल कर अति सूक्ष्म मात्रा में शरीर के लाल रक्ताणुओं को नष्ट कर देती है।

AGRIGYAN.IN

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने जल में नाइट्रेट की अधिकतम सीमा 45 मिग्रा./ली. निर्धारित की है। पेयजल में नाइट्रेट की अधिकता के कारण मैथोहिमोग्लोबेमिया नामक बीमारी हो जाती है जिसे ब्लूबेबी सिन्ड्रोम कहते हैं। नाइट्रेट पाचन के दौरान कार्बनिक पदार्थों से क्रिया करके नाइट्रोसामीन नामक कैंसरकारी रसायन बनाते हैं।

(घ) कार्बनिक रसायन (Organic Chemicals)–

यह सूक्ष्म धातुओं की अपेक्षा अधिक हानिकारक होते हैं। कार्बनिक रसायन जल में अघुलनशील जबकि वसा में घुलनशील होते है। इसी कारण ऐसे रसायनिक पदार्थ अल्प मात्रा में शारीरिक उपापचयन प्रक्रिया के पश्चात् में ही वसा तंतुओं में एकत्र होते रहते हैं। जल में अघुलनशील डी.डी.टी. समुद्री मछलियों के तंतुओं में भी पाया जाता है जो अन्ततोगत्वा मछलियों के सेवन से मानव के शरीर में भी पहुंच जाता है।

3. तलछट (Sediment) :

तलछट मृदा में अघुलनशील अज्ञात सूक्ष्माणुओं का मिश्रण होता है जो मृदा अपरदन से जल स्रोतों में प्रवेश कर जाता है। वास्तव में सतही जल प्रदूषण के व्यापक प्रदूषक तत्व तलछट होते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्राकृतिक जल में पहुँचने वाले निलम्बित कणों का घनत्व स्राव के घनत्व से लगभग 700 गुणा अधिक है। क्षेत्र विशेष में होने वाली कृषि क्रिययें, भवन निर्माण एवं खनन संबंधी गतिविधियां मृदा अपरदन को अधिक प्रभावित करते हैं जिससे सूक्ष्म तत्व पानी में पहुंच कर तलछट के रूप में जमा होते रहते हैं।

4. रेडियो सक्रिय तत्व (Radio Active Elements) :

मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे घातक प्रदूषकों में इन प्रदूषकों को शामिल किया जाता है। पर्यावरण से सम्बन्धित विकिरण समस्थानिक स्रोतों को प्राकृतिक एवं कृत्रिम वर्गों में विभाजित किया जाता है। रेडियो आइसोटोप कॉस्मिक किरणों से उत्पन्न होकर अवक्षेप (वर्षा एवं हिमपात) तथा वायु के माध्यम से मृदा एवं जल धाराओं में पहुंच जाते हैं जबकि भूमि की सतह और उसके अन्दर उत्पन्न होने वाले आइसोटोप विकिरण अपक्षय के कारण बनने वाले तत्वों के माध्यम से पानी तक पहुंचते हैं। दूसरी ओर मानव निर्मित रेडियो समस्थानिकों में मुख्यतः परमाणु परीक्षणं से होने वाले अवघात विस्फोट, परमाणु ऊर्जा, संयंत्रों से निकलने वाला रेडियो सक्रिय अपशिष्ट, परमाणु संस्थानों और आयुर्विज्ञान प्रतिष्ठानों की विभिन्न प्रकार की गतिविधियों से निकलने वाले रेडियो विकिरण सम्मिलित हैं।

5. तापीय प्रदूषक (Thermal Pollutant) :

कोयले की राख एवं वाष्प शक्ति चालित संयंत्रों में काम में लिया जाने वाला नाभिकीय ईंधन तापीय प्रदूषकों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है। इनसे निकलने वाली ऊष्मा का अल्प अंश ही सफलता पूर्वक कार्य में परिणित होता है, शेष व्यर्थ चला जाता है। आधुनिकतम कोयला संचालित विद्युत उत्पादन संयंत्रों की दक्षता भी 40 प्रतिशत से अधिक नहीं होती है। इन संयंत्रों में काम आने वाले कंडेन्सर निकटवर्ती नदी, झील या नगर पालिका के संसाधनों आदि से उपलब्ध पानी का उपयोग करके, पुनः गंदे पानी को इनमें छोड़ते हैं तो इस सारी प्रक्रिया में पानी का तापमान 30 डिग्री से. तक बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप जलीय जीवन के डी.ओ. स्तर में कमी आने से जलीय जीव जन्तुओं पर विपरीत प्रभाव डालता है।

6. औद्योगिक रसायन जनित प्रदूषण :

जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ औद्योगिक गतिविधियों में वृद्धि के कारण प्रदूषण तेज गति से बढ़ रहा है, प्रदूषण का प्रभाव औद्योगिक क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि एन्टार्कटिक, आर्कटिक और सुदूर स्थित प्रकृति संरक्षित क्षेत्रों सहित समस्त भूमण्डल पर देखा गया है। इस प्रकार प्रदूषकों की बढ़ती सघनता के परिणामस्वरूप कुछ पदार्थों की सान्द्रता के बढ़ने से पारिस्थितिक तंत्र पर विषैले प्रभाव पड़ रहे हैं। एक करोड़ दस लाख ज्ञात रसायनों में से लगभग 60,000 – 70,000 रसायन नियमित प्रयोग में आते हैं। पर्यावरण को विषाक्त बनाने वाले इन रसायनों के प्रभाव का आंकड़ा बीमा है परन्तु फिर भी कुछ ऐसे मामले सामने आए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि भारी धातु, उपधातु, कीटनाशक, कपड़े धोने वाले साबुन, डिटर्जेन्ट, गंध, पॉलीक्लोरीन युक्त यौगिक तथा अग्निशामक रसायन जल स्रोतों से मिलकर उनको विषाक्त बना रहे हैं।

7. तेजाबकरण (Acidification) :

तेजाबीकरण को जीव मंडल में एक या अधिक क्षेत्रों में अधिक तेजाब युक्त होने वाले परिवर्तन या उनके प्रतिबिम्बों की प्रक्रिया के रूप में पहचाना जा सकता है जो इस प्रकार के परिवर्तन प्रस्तुत करते हैं। तेजाब की बढ़ती हुई सान्द्रता को वर्षा, ताल जल, बर्फ, झीलों, नदियों, भूजल एवं मृदा में आसानी से देखा जा सकता है। मृदा एवं चट्टानों में तीव्रगति से तेजाबीकरण करने वाली प्राकृतिक, भौतिक, रसायनिक एवं जैविक क्रियाएं होती रहती हैं तथा ज्वालामुखी विस्फोट एवं बिजली गिरने जैसी भौतिक एवं रसायनिक घटनाएं भी अम्ल वर्षा

AGRIGYAN.IN

के लिए उत्तरदायी है। इसके अलावा दलदल, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से तेजाबी गैस उत्पन्न करने वाले औद्योगिक बहिःस्राव, जंगलों का कटना, खाद एवं उर्वरकों का अनियंत्रित उपयोग एवं उनकी जैव मात्रा क्षेत्र विशेष में तेजाबीकरण के लिए जिम्मेदार हैं। वातावरण में वायु प्रदूषण से बनने वाले रासायनिक यौगिक जैसे नाइट्रोजन, ऑक्साइड, नाइट्रिक अम्ल एवं अमोनिया लवण भी तेजाबकारी प्रभाव रखते हैं तथा ये प्रदूषक यौगिक जल की किसी भी विशिष्ट अवस्था जैसे ताल जल एवं ओस कणों के रूप में गिरकर तेजाब के रूप में इकट्ठे होते रहते हैं। वर्षा से तेजाब कण, पादपों, पशुओं या मनुष्य निर्मित ढांचों के तुरन्त सम्पर्क में आते हैं तो प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होते हैं तथा जब तेजाब मृदा एवं जलीय पर्यावरण में रसायनिक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं तो अप्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

8. तेलीय जल प्रदूषण (Oily Water Pollution) :

कमोबेश तेल प्रदूषण तेल भण्डारण रिसाव, जीवाश्म ईंधन उपयोग, ग्रीन हाऊस गैसों में वृद्धि एवं तेल टैंकरों से रिसाव आदि से होता है जिससे तेलीय प्रदूषक भूमण्डलीय जलवायु में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा जलयानों एवं तेल पाइप लाइनों से रिस कर निकलने वाला तेल तथा तलघरों में बनाये गये तेल भण्डारों से तेलीय हाइड्रोकार्बन विभिन्न माध्यमों द्वारा ताजे पानी में मिलकर उसे प्रदूषित करते रहते हैं। तेलीय प्रदूषण से मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों पर घातक प्रभाव देखे गये हैं।

9. खनन से जल प्रदूषण (Pollution by mining):

खनन क्रिया के दौरान उत्पन्न धूलकरण नदियों, झीलों, जलाशयों एवं कुंओं के जल को प्रदूषित करते रहते हैं। सबसे अधिक जल प्रदूषण कोयला खनन से होता है। अनुमानतः प्रतिवर्ष सवा करोड़ टन कोयला खुली खानों से निकलने के पश्चात् उसकी सफाई में तथा इतने ही कोयले की पाइप द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने के क्रम में क्रमशः 900 करोड़ गैलन व 280 गैलन व्यर्थ पानी प्राप्त होता है। यह गंदा पानी जल स्रोतों तक पहुंच कर उन्हें प्रदूषित करता है और बिना शोधन के यह जल मैदानों एवं खेतों में जाकर फसलों को हानि पहुंचाता है।

10. कृषि एवं कृषि कार्यों द्वारा जल प्रदूषण :

कृषि उपज बढ़ाने में रसायनिक खादों की मुख्य भूमिका भली प्रकार सिद्ध हो चुकी है। पिछले आधे दशक से भारत में रसायनिक खादों के अतिरिक्त जैव खादों और कीटनाशकों के उपयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। योजनाबद्ध ढंग से उपज बढ़ाने के लक्ष्य को पाने के लिए जहां उपर्युक्त वस्तुओं का प्रयोग अनिवार्य है, वहीं यह भी सत्य है कि इन उर्वरकों के असंतुलित उपयोग ने पर्यावरण संबंधी समस्याएं भी उत्पन्न की है।

आंकड़ों के अनुसार भारत में नाइट्रोजन की क्षमता धान में 30–40 प्रतिशत और गेंहू के क्षेत्र में लगभग 50–60 प्रतिशत है तथा पोटैशियम और फॉस्फोरस खाद की क्षमता मूल्य क्रमशः 50 प्रतिशत और 15–20 प्रतिशत के लगभग है। इससे पता चलता है कि प्रयुक्त खादों की अधिक मात्रा पौधों के लिए आवश्यक नहीं होती वरन् यह भूमिगत जल में पहुंच कर जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न करती है। उर्वरकों में प्रदूषणकारी तत्व के रूप में नाइट्रोजन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उर्वरकों में मिलाए गए सूक्ष्म जैव तत्व यदि भूजल में पहुँच जाते हैं तो वे जल को विषाक्त कर देते हैं, परिणामस्वरूप सामान्य खेती और उर्वरकों के विशेष योगदान का निश्चित हिसाब नहीं लगाया जा सकता है।

11. लौह अयस्क उद्योग से उत्पन्न जल प्रदूषण :

लौह अयस्क बनाने के पश्चात् बचे हुए स्लैग को अन्यत्र फेंक दिया जाता है जो वर्षा जल में घुलकर शुद्ध जल को प्रदूषित करता रहता है, तब इससे निकलने वाले रसायन नदी–नालों में मिलकर सतही एवं भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं।

12. चमड़ा उद्योग से जल प्रदूषण :

सतही तथा भूमिगत दोनों प्रकार के जल चमड़ा उद्योग से निकलने वाले दूषित जल द्वारा प्रदूषित होते हैं। चमड़ा उद्योगों से निकलने वाले प्रदूषित जल में 35 प्रतिशत से भी अधिक फ्लोराइड के अलावा पानी में खारापन, अमोनिया, सल्फाइड, टेनिन और क्रोमियम जैसे तत्वों की मात्रा होती है। यह जल मछलियों के लिए सबसे अधिक हानिकारक होता है।

13. सुपोषण :

सुपोषण का शाब्दिक अर्थ पर्याप्त भोजन प्रदान करना है। इसका उल्लेख झीलों, बांधों, धीमी गति से बहने वाली नदियों, समुद्र तटीय जल, अतिरिक्त उर्वरकों में भी किया जा सकता है जो अन्य असुविधाकारी जलीय पौधों को जन्म देते हैं। इसके कारण पानी की गुणवत्ता में कमी के अलावा खाद और गंध जैसी समस्याएं, ऑक्सीजन एवं पारदर्शिता में कमी, मछलियों की सम्भावित मृत्यु, जल प्रवाह में रुकावट, पशुओं एवं मनुष्य पर विषाक्त प्रभाव जैसी समस्याएं उत्पन्न होती है तथा झीलों, बांधों, सरोवरों एवं समुद्र तटीय पानी में पाये जाने वाले सुपोषणकारी तत्व नहाने पर चर्म रोग उत्पन्न करते हैं।

सुपोषण पर नियंत्रण – जल संसाधनों पर पोषक तत्वों के अतिरिक्त दबाव में भारी कमी करके ही सुपोषण की स्थिति पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सकता है। जल स्रोतों में पोषक

AGRIGYAN.IN

तत्वों के व्यापक संतुलन, विशेष भौगोलिक एवं जलवायु संबंधी और प्राकृतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किये गये सामूहिक प्रयास ही प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

जल प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Water Pollution)–

विभिन्न दैनिक कार्यों एवं अत्यधिक उपयोग में आने के कारण जल प्रदूषण के प्रभाव मानव, जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर अनेकों प्रकार से पड़ता है, जिसका वर्णन नीचे किया गया है–

1. मनुष्यों पर प्रभाव–

मनुष्य जल का प्रयोग पीने में अथवा अन्य भोज्य पदार्थों के द्वारा करता है। प्रदूषित जल के प्रयोग से मनुष्यों पर निम्नलिखित कुप्रभाव पड़ते हैं–

(क) विभिन्न प्रकार के रोग– दूषित पानी के प्रयोग से अनेकों रोग पाये गये हैं, जैसे– रोगजनक जीवाणु द्वारा टाइफाइड, पेचिस, हैजा आदि विषाणुओं द्वारा पीलिया, यकृत ज्वर आदि प्रोटोजुआ द्वारा पेट तथा ओंत सम्बन्धी रोग, एस्केरिस एवं फीताकृमि पेचिस एवं आँतों के रोग फैलते हैं। जल में पाये जाने वाले विभिन्न रासायनिक अपद्रव्यों से भी अनेकों रोग एवं विकृतियाँ पैदा होती है, जैसे–पानी में 10 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक फ्लुओराइड दांतों एवं हड्डी सम्बन्धी रोग पैदा करता है। जल में उपस्थित नाइट्रेट एवं नाइट्राइट की मात्रा ऑक्सीजन वहन क्षमता को कम करती है। जल में सीसा की मात्रा अधिक होने पर वृक्क शोथ, उदर शूल, कोष्ठवद्धता आदि रोग हो जाते हैं। जल में पारे एवं रेडियोधर्मी पदार्थों की मात्रा होने से विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है।

(ब) जल के रंग एवं स्वाद में परिवर्तन– प्रदूषित जल में शैवाल उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा कार्बनिक पदार्थ सड़ जाते हैं या धूल मिल जाती है जिससे पानी का रंग बदल जाता है। पानी में अमोनिया या हाइड्रोजन सल्फाइड गैसों के घुल जाने से पानी का गन्ध स्वाद अप्रिय हो जाता है।

(स) अपाच्य भोजन– प्रदूषित जल से तैयार भोज्य पदार्थ पाचन की दृष्टि से अच्छे नहीं होते अथवा भोजन पदार्थों के बनने में भी प्रदूषित जल बाधक होता है। भोज्य पदार्थों का संरक्षण अधिक समय तक नहीं किया जा सकता। दूषित जल को स्वच्छ बनाने में खर्च भी अधिक होता है अतः दूषित जल की उपयोगिता भी कम हो जाती है।

(द) स्वास्थ्य के लिए जल का विषैला हो जाना– कभी–कभी जमीन में गैस पाइप लाइन के टूट जाने से पेयजल स्रोत का जल मानव स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध होता है। इसी प्रकार से पानी की पाइप लाइन के टूट जाने से आसपास की गन्दगी जल में मिल जाने से जल हानिकारक हो जाता है।

(2) जल प्रदूषण का भूमि एवं फसलों पर प्रभाव–

सिंचाई के लिए प्रयोग किये जाने वाले जल की गुणवत्ता के अनुसार ही भूमि एवं फसलें प्रभावित होती है। लवणयुक्त जल के प्रयोग से भूमि भी लवणीय होने लगती है, मृदा की विद्युत चालकता बढ़ जाती है, मृदा के घोल में लवणीय पदार्थों की मात्रा अधिक हो जाने से पोषक तत्व पौधों को कम प्राप्त होने लगते हैं जिससे मृदा की उत्पादकता घटने लगती है। क्षारयुक्त जल से मृदा जल निकास खराब हो जाता है। जमीन में पानी भरा रहने लगता है, मृदा में अवायवीय अवस्थाएं भी अधिक पैदा हो जाती है। मृदा में विनिमयशील सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत अधिक हो जाती है, मृदा का पी.एच. मान 9.0 से अधिक हो जाता है। लाभदायक जीवाणुओं की संख्या एवं कार्यक्षमता कम हो जाती है।

जिस पानी में बोरोन अधिक होता है तो इसके प्रयोग से भारी प्रकार की मृदाओं में बोरोन की सान्द्रता बढ़ने लगती है। लवणीय पानी में बोरोन की मात्रा अधिक पाई जाती है।

लवणीय एवं क्षारीय पानी के प्रयोग से फसलों के बीजों का अंकुरण कम होता है। दलहनी फसलों के बीजों का अंकुरण अधिक प्रभावित होता है। पौधों की वृद्धि कम होती है, पौधों में किल्ले कम फूटते हैं। पौधों के लिए जल एवं पोषक तत्वों की वृद्धि कम हो जाती है जिससे फली छोटी बनती है, दाना पतला पड़ जाता है, फलों का आकार एवं संख्या कम हो जाती है। बोरोनयुक्त पानी के प्रयोगों से पौधों की पत्तियाँ पर्णहरित रहित हो जाती है। पत्तियाँ किनारों की ओर झुलस सी जाती है एवं उनकी नसें भी पर्णहरित रहित हो जाती है। पत्तियों पर चकत्ते से बन जाते हैं। अतः फलस्वरूप पैदावार में 50 प्रतिशत से अधिक तक हानि होती है। प्रदूषित जल में कीटनाशक, कवकनाशक एवं उद्योगों के विसर्जित जहरीले धातु तत्व भी भूमि एवं फसलों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के फलस्वरूप वायुमण्डल में कार्बन डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है। यह गैस जल से संयोग करके कार्बोनिक अम्ल बनाती है। इस अम्ल से हाइड्रोजन आयन उत्पन्न होते हैं क्योंकि इस क्रिया में कार्बोनेट आयन नीचे चले जाते हैं, जो पानी से मिलकर उसे अम्लीय बना देते हैं। ऐसे पानी से सिंचाई करने से पौधों की जड़े कमजोर हो जाती हैं तथा जड़ों की संख्या भी घट जाती है। अम्लीय जल मृदा को अम्लीय बनाता है। अम्लीय माध्यम में अनेकों पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो

AGRIGYAN.IN

जाती है। नहरों के किनारे रिसाव के कारण जल स्तर ऊँचा हो जाता है। जल स्तर के बढ़ने से पेड़–पौधों की जड़ों के प्रसार क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त जल निकास के अभाव में विषाक्त जल निचले स्थानों में भर जाता है जिससे धीरे–धीरे मृदा सोडियम के हानिकारक प्रभाव से ग्रस्त हो जाती है जिससे मृदा कणों की संरचना एवं संगठन प्रभावित होते हैं और फसलोत्पादन पर हानिप्रद प्रभाव पड़ता है। आँधी तूफान के प्रभाव से जल–स्रोतों की ऊपरी सतह के मटमैली हो जाने से जलीय पौधों की प्रकाश–संश्लेषण क्रिया अपूर्ण रहने से पौधे ठीक प्रकार से भोजन नहीं बना पाते और मरने लगते हैं।

(3) जलीय जीवन पर प्रभाव–

जल में जीव–जन्तु एवं वनस्पतियाँ दोनों ही पायी जाती है। जल की ऊपरी सतह पर अशुद्धियों की पर्त जम जाने से जल के भीतर रहने वाले जीवधारियों की श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। वनस्पति के प्रकाश–संश्लेषण में बाधा हो जाती है। जलाशयों या पानी स्रोतों में कीटनाशी, कवकनाशी एवं रासायनिक उर्वरकों एवं हानिकारक धातुओं के मिल जाने से जलीय जीव–जन्तु एवं वनस्पति उर्वरकों एवं हानिकारक धातुओं के मिल जाने से जलीय जीव–जन्तु एवं वनस्पति मरने लगते हैं। कूड़ा–करकट, कचरा तथा अन्य कार्बनिक अवशिष्ट जलाशयों के तल में बैठ जाते हैं जिससे वनस्पतियों एवं जीव सड़कर मर जाते हैं तथा जलकुंभी अधिक पैदा हो जाती है जो जल स्रोत को प्रदूषित करती हैं। तैलीय प्रदूषण एवं तापीय प्रदूषण से ल के जीव जैसे मछली तथा जल के पक्षी मरने लगते हैं।

जल प्रदूषण नियंत्रण के उपाय :

जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए निम्नांकित उपाय किये जा सकते हैं–

1. कल कारखानों से निकलने वाले जहरीले अपशिष्ट पदार्थों एवं गर्म जल का मुख्य जल स्रोतों जैसे जलाशयों, नदियों या समुद्रों में विसर्जन रोकना चाहिए।
2. जिन फसलों पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है उन खेतों से बहने वाले जल को पीने वाले जलाशयों व कुओं में जाने से रोकना चाहिए।
3. कीटनाशकों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाना चाहिए, इनकी जगह जैवनाशकों जैसे बैसिलस या ऐसे विषाणुओं का प्रयोग करना चाहिए जो सिर्फ कीटाणुओं का प्रयोग करना चाहिए जो सिर्फ कीटाणुओं का नाश करें। इसके अतिरिक्त जैव उत्प्रेरकों जैसे राइजोबियम, नीलहरित शैवाल, एजोटोबैक्टर, माइकोराइजा का प्रयोग करना चाहिए।
4. कूड़े–करकट को जलाशयों एवं नदियों में न डालकर शहर से बाहर किसी गड्डे में डालना चाहिए।
5. उर्वरक एवं विद्युत संयंत्रों से सल्फर तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम करके अम्लीय वर्षा को रोका जा सकता है।
6. मृत जीव–जन्तुओं को नदियों में प्रवाहित न करने के साथ चिता की राख नदियों में नहीं डालनी चाहिए।
7. चमड़ा उद्योग में चमड़ी से बाल निकालने तथा उसे नरम करने की प्रक्रिया में प्रोटियेस एन्जाइम को व्यवहार में लाना चाहिए। इस प्रक्रिया में अल्प जल के साथ–साथ सल्फेट, टैनिन, अमोनिया, क्रोमियम आदि रसायनों का भी अल्प मात्रा में उपयोग होता है।
8. कपड़ा तथा अन्य उद्योग जिनमें रंगों का प्रयोग होता है उनके रंगीन जल में रंगों का शोषण करने के लिए लिग्निन का प्रयोग करना चाहिए जो कागज उत्पाद के अवशिष्ट जल में पाया जाता है।
9. विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री बनाने वाले उद्योगों में सौर ऊर्जा की सहायता से अवशिष्टों का उपचार करके बचे हुए जल को सिंचाई के काम में लेना चाहिए।
10. सीवर लाइनों का जल शहर से बाहर शोधन करके नदियों में डालना चाहिए।
11. तैलीय पदार्थों से बने कीचड़ को बायोरेमिडियेशन तकनीक द्वारा शुद्ध करना चाहिए तथा मिट्टी के साथ कीचड़ को मिलाकर उसकी सांद्रता एवं तापमान बनाये रखते हुए उसमें यूरिया एवं फास्फेट आदि डालकर उसे खाद में बदल देना चाहिए।

(2) वायु प्रदूषण (Air Pollution)–

वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसें सामान्य अवस्था में एक निश्चित अनुपात में पायी जाती है। सामान्यतः वायु में नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत, कार्बन डाई–ऑक्साइड 0.3 प्रतिशत, शेष निष्क्रिय गैसें जल वाष्प होती है। इन गैसों का विभिन्न जीवधारियों तथा वायुमण्डल के बीच चक्रीयकरण होता रहता है। इस चक्रीयकरण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप इन गैसों का अनुपात वायुमण्डल में स्थायी रूप से बना रहता है। जब वायु में अवांछनीय तत्व प्रवेश करते हैं तो वायु में विद्यमान गैसों का मौलिक अनुपात तथा संतुलन बिगड़ जाता है। इस स्थिति को वायु प्रदूषण के नाम से जाना जाता है। वास्तव

AGRIGYAN.IN

में वायु प्रदूषण का मतलब है हवा में धूल और कार्बन के महीन कणों तथा नुकसान पहुँचाने वाली गैसों का एक सीमा से अधिक हो जाना, नाइट्रोजन डाइ–ऑक्साइड, सल्फर डाइ– ऑक्साइड और कार्बन मोनो ऑक्साइड की मात्रा तथा हवा में घुले हुए वो महीन कण जो नंगी आँखों से नहीं दिखाई देते, उन्हें पी–एम 2.5 कहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय किये गये मापदण्ड से इनका अधिक हो जाना ही वास्तव में वायु प्रदूषण की मुख्य कसौटी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक इन कणों की मात्रा हवा में 25 माइक्रोग्राम प्रति मीटर से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। हवा में अगर इनकी मात्रा 100 माइक्रोग्राम हो जाए तो ऐसी हवा प्रदूषित कही जायेगी और अगर यह 300 माइक्रोग्राम तक चली जाए तो फिर कम से कम बच्चों, बूढ़ों, दमे के मरीजों व बीमारों को तो घर में ही रहना होगा। सन् 2015 की शुरूआत में पहले तीन सप्ताह दिल्ली के पंजाबी बाग इलाके में प्रदूषण की औसत रीडिंग 473 पीएम–2.5 थी। जबकि चीन की राजधानी बीजिंग में तब यह 227 थी। लेकिन नवम्बर–दिसम्बर 2015 में तो कई बार दिल्ली में प्रदूषण की मात्रा 500 माइक्रोग्राम की सीमा को भी पार कर गई। यह विश्व स्वास्थ्य संगठन की निर्धारित प्रदूषण मात्रा से 2000 गुना अधिक है।

वायु प्रदूषण के स्रोत (Sources of Air Pollution)–

वायु प्रदूषण के प्राकृतिक एवं मानवीय अनेक प्रकार के स्रोत है। यदि मनुष्य अपने विकास कार्यों को न भी करें तो प्रकृति में स्वतः वायु प्रदूषण होता रहता है, परन्तु प्रकृति भी इस प्रदूषण का नियंत्रण भी करती है। वायु प्रदूषण समस्या तो उस समय उत्पन्न होती है जब मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस संतुलन को बिगाड़ता है। वायु प्रदूषण के निम्नलिखित स्रोत हैं–

(1) घरेलू कार्यों में दहन से

(2) ताप विद्युत ऊर्जा हेतु दहन से

(3) यातायात में इंधन के दहन से

(4) औद्योगिक कारखानों से

(5) विलायकों के प्रयोग से

(6) कृषि क्रियाओं द्वारा

(7) अन्य स्रोत

(1) घरेलू कार्यों में दहन से– जल गर्म करने, भोजन बनाने आदि कार्यों के लिए ईंधन, लकड़ी, गोबर, कपड़े, खेतों का कचरा, घास–फूस, कोयला, मिट्टी का तेल तथा कुकिंग गैस जला कर उष्मा प्राप्त करते हैं। इनके जलने से कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, आर्गेनिक पार्टीकुलेट इत्यादि गैसें निकलती है जो वायु के प्रदूषण का कारण होती है।

(2) ताप विद्युत ऊर्जा हेतु दहन से– ताप विद्युत उत्पादन के लिए ताप–विद्युत गृहों में ऊष्मा प्राप्ति के लिए बहुत अधिक मात्रा में कोयला जलाया जाता है जिसके जलने के परिणामस्वरूप CO_2, SO_2 इत्यादि गैसें और अत्यधिक मात्रा में धुआँ उत्पन्न होता है जिसके कारण वायु प्रदूषण होता है।

(3) यातायात में इंधन के दहन से– यातायात के विभिन्न साधनों, जैसे– मोटर कार, ट्रक, बस, डीजल रेल तथा वायुयान इत्यादि जो आंतरिक दहन ईंधन पर आधारित हैं, इन साधनों में दहन के लिए जो पेट्रोल, डीजल, क्रूड ऑयल इत्यादि ईंधनों का प्रयोग किया जाता है, इनके जलने से अत्यधिक मात्रा में काला धुआँ निकलता है, वह वायुमण्डल को प्रदूषित करता है।

(4) औद्योगिक कारखानों से– कारखानों की भट्टियों तथा चिमनियों से दिन–प्रतिदिन धुआँ एवं विषाक्त गैसें निकलती है, जो वायुमण्डल को दिन–रात प्रदूषित करती है। कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड आदि विषैली गैसें कारखानों से निकल कर निरन्तर वायु प्रदूषण उत्पन्न करती है।

(5) विलायकों के प्रयोग से– विभिन्न प्रकार के विलायक जो विभिन्न प्रकार के कार्यों में प्रयोग किये जाते हैं, वाष्पशील होने के कारण प्रयोग करते समय अत्यन्त सूक्ष्म कणों तथा वाष्प के रूप में वायु में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

(6) कृषि क्रियाओं द्वारा– गहन कृषि में आजकल अनेक प्रकार के विषैले रासायनिकों का प्रयोग खरपतवार, कीट, कवक, जन्तु एवं रोग नियंत्रण के लिए किये जाते हैं जिससे अनेक कार्बनिक फॉस्फेट, क्लोरीन युक्त हाइड्रोकार्बन, पारा, सीसा इत्यादि प्रदूषण निकलते रहते हैं जो वायु मण्डल में मिलकर उसकी स्वच्छ वायु को गम्भीर रूप से प्रदूषित कर देते हैं।

(7) अन्य स्रोत– गलियों, खेतों एवं सड़क से निकलने वाले कूड़े–करकट को एकत्रित करके जलाने से पर्याप्त मात्रा में धुआँ तथा कार्बन के कण उत्पन्न होते हैं जिससे वायु का प्रदूषण होता है। शादी–विवाह तथा त्योहारों व अन्य उत्सवों के समय चूल्हें जलाये हैं उनसे उत्पन्न धुआँ भी वायु प्रदूषण का कारण बनता है।

AGRIGYAN.IN

वायु प्रदूषण का चित्र द्वारा प्रदर्शन

वायु प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Air Pollution)–

वायु प्रदूषण का प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वायु प्रदूषण के प्रभावों को निम्नलिखित प्रकारों से समझा जाता है–

(1) पौधों की वृद्धि पर प्रभाव : पेड़–पौधे सूर्य के प्रकाश में वायु से कार्बन डाइ–ऑक्साइड लेकर प्रकाश–संलेषण की क्रिया द्वारा अपने भोजन का निर्माण करते हैं। वायु–प्रदूषण के फलस्वरूप पत्तियों की उपरी सतह पर धूल के कण जम जाने से प्रकाश संलेषण एवं उत्स्वेदन क्रियाओं में व्यवधान उत्पन्न होने लगता है।

प्रकाशकाल में कमी आने के कारण कुछ दिनों के बाद भोजन व्यवस्था में व्यवधान पड़ जाने के कारण पौधे पीले पड़ कर मरने लगते हैं। ईंधन के जलने स सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रस ऑक्साइड गैसों के वातावरण की नमी के सम्पर्क में आने से सल्फ्यूरिक अम्ल एवं नाइट्रिक अम्ल बनते हैं। जो अम्लीय वर्षा (Acid rain) के रूप में फसलों को जला देते हैं।

विभिन्न प्रकार के वाहनों एवं कारखानों से निकलने वाले धुँएं में कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड आदि गैसें होती हैं, जो पृथ्वी पर आने वाली सूक्ष्म तरंगीय विकिरणों के लिए पारदर्शी होती हैं, परन्तु पृथ्वी तल से अन्तरिक्ष को लौटाने वाली दीर्घ तरंग विकिरण के लिए व्यवधान पैदा करती है। फलस्वरूप वातावरण का ताप लगातार बढ़ने का खतरा है, जिससे ध्रुवीय बर्फ पिघलने की सम्भावना के फलस्वरूप संसार के निचले क्षेत्रों के जलमग्न होने की संभावना भी बढ़ती जाती है। इसी कारण फसलों की बुवाई एवं पकने का समय भी परिवर्तित हो रहा है जिससे फसलों की पैदावार प्रभावित होने लगी है।

वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से फसलों में फूल आने में देरी होने लगती है। वातावरण में ताप में वृद्धि के कारण मृदा नमी भी कम होने लगती है। अधिक समय तक नमी संचित नहीं रह पाती जिससे फसलें एक से दो सप्ताह पूर्व ही पक जाती है। फलस्वरूप फसलोत्पादन कम हो जाता है।

(2) जीव–जन्तुओं पर प्रभाव– वायुमण्डल में छाये हुए धुँए के कारण सूर्य की पराबैंगनी किरणें नीचे पृथ्वी पर आ जाती हैं जिससे जीवधारियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित वायु में जीवधारियों की श्वसन क्रिया भी प्रभावित होती है। पशुओं के चारे में फ्लुओराइड की मात्रा बढ़ जाने से फ्लुओरोसिस बीमारी होने लगती है जिससे पशु लंगड़े होने लगते हैं। वायु प्रदूषण से मधुमक्खी अक्रियाशील होकर मरने लगती है। अम्लीय वर्षा के पानी के तालाबों में पहुँचने से मछलियाँ भी मरने लगती है।

(3) मनुष्यों पर प्रभाव– प्रदूषित वायु में पाई जाने वाले धातु कण, कार्बन कण, विभिन्न प्रकार की हानिकारक गैसें, धुँआ आदि से मनुष्य की श्वसन क्रिया में व्यवधान पहुँचता है। प्रदूषित वायु में साँस लेने से यकृत तथा किडनी में क्षति, आहार नली में क्षति, क्षय, मधुमेह तथा कैंसर आदि रोग हो जाते हैं। वायु में कार्बन मोनो–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से रक्त हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन वहन क्षमता घट जाती है। वायु में कार्बन डाइऑक्साइड अधिक होने से दम घुटने लगता है।

(4) वायुमण्डल पर प्रभाव– वायुमण्डल में अधिक धुँआ के सूक्ष्मकण प्रकाश किरणों को प्रकीर्णित कर देने में सक्षम होते हैं जिससे वस्तुएँ दिखाई देने में व्यवधान पैदा हो जाता है। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के तापक्रम में वृद्धि के लिए बढ़ती हुई कार्बन डाइऑक्साइड मुख्य कारण है।

पचास वर्ष में लगभग 1 डिग्री से. तापक्रम पृथ्वी का बढ़ गया है। अतः 3.6 डिग्री से. की और वृद्धि हो जाने से आर्कटिक तथा अंटार्कटिक के हिमखण्ड पिघल कर पृथ्वी पर 100 मीटर ऊँचा जलस्तर उत्पन्न कर देंगे। बादलों का आसामयिक बनना एवं वर्षा करना तथा वर्षा के दिनों में कम वर्षा होना वायुमण्डल में प्रदूषण का ही प्रभाव है।

वायुमण्डल में CO_2 के प्रभाव से ओजोन पर्त की मोटाई कम होने लगती है जिससे सूर्य का हानिकारक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकने की क्षमता कम होने से हानिकारक प्रभाव संभावित है। ओजोन (O_3) ऑक्सीजन का एक अपररूप है। ओजोन का रंग नीला तथा गंध तीक्ष्ण होती है। इसकी अधिक मात्रा हानिकारक जबकि कम मात्रा लाभदायक होती है। प्रकृति में ओजोन + 0.1 से 1.1 भाग प्रति 10 लाख भाग तक पायी जाती है। प्रकृति में ओजोन ऑक्सीजन से बिजली चमकने पर उत्पन्न होती है।

AGRIGYAN.IN

ऑक्सीजन तथा सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों द्वारा भी ओजोन बनती रहती है। इस प्रकार से प्राप्त ओजोन पृथ्वी के चारों तरफ एक सुरक्षा कवच बना लेती है जो सूर्य की घातक किरणों को पृथ्वी तक आने से रोकती है। यदि यह कवच न होता तो दिन का तापक्रम + 130^{0} तथा रात्रि का तापक्रम -150^{0} सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाने की संभावना व्यक्त की गई है। क्लोरो–फ्लोरो कार्बन तथा नाइट्रिक ऑक्साइड ओजोन को सूर्य के प्रकाभा में विघटित करते हैं जिससे ओजोन हटने से छेद दिखाई देने लगता है जिससे सूर्य की गरमी का पृथ्वी पर आना प्रारम्भ हो जाता है।

(5) अन्य पदार्थों पर प्रभाव– प्रदूषित वायु का अजैविक वस्तुओं पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे–धातु, भवन, संगमरमर, चूना आदि पर सल्फर डाइऑक्साइड एवं सल्फर ऑक्साइड से नमी की उपस्थिति में क्षरण होता है। हाइड्रोजन सल्फाइड से चाँदी की चमक कम हो जाती है और शीशे की वस्तुएं काली पड़ने लगती है। ऐतिहासिक इमारतें धुंए के प्रभाव से चमक खोने लगती है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण (Control of Air Pollution)–

वायु प्रदूषण रोकने के लिए प्रदूषण के स्रोत पर भी नियंत्रण आवश्यक है। वायु प्रदूषण नियंत्रण की मुख्य विधियाँ निम्न प्रकार से हैं :–

(1) पृथक्करण विधि– इस विधि के अन्तर्गत छानकर (Filtration), निःसादन (Sedimentation), घोलकर (Dissolving) एवं अधिशोषण (Absorption) द्वारा वायु प्रदूषण नियंत्रित किया जाता है।

(i) छानकर (Filtration)– इसमें एक छन्ने का प्रयोग किया जाता है, जिससे कणदार पदार्थ छन्ने पर रुक जाते हैं और गैस बाहर निकल जाती है।

(ii) निःसादन द्वारा (Sedimentation)– इसमें एक चक्रवात रूपी उपकरण का प्रयोग किया जाता है। प्रदूषित वायु चक्रवात रूपी उपकरण में घूमकर निकलती है जिससे कणिकाएं निःसादित होकर रुक जाती है। स्वच्छ वायु बाहर निकल जाती हैं।

(iii) घोलकर (Dissolving)– प्रदूषित वायु को या तो जल से उपचारित किया जाता है अथवा उसे विशेष प्रकार के यंत्र में होकर गुजारा जाता है जिससे उसमें प्रदूषित गैसें घुल सकें। इस कार्य के लिए मार्जक यंत्र (Scrubbers machine) काम में लाया जाता है।

(iv) अधिशोषण (Absorption)– उपर्युक्त ठोस पदार्थ का उपयोग प्रदूषित गैसों को शुद्ध करने के लिए करते हैं, जैसे–चारित कार्बन।

(2) रूपान्तरण विधि– इस विधि में रासायनिक पदार्थों द्वारा वायु में उपस्थित प्रदूषकों को नुकसान न पहुँचाने वाले रूप में ऑक्सीकरण अथवा उदासीनीकरण द्वारा परिवर्तित कर दिया जाता है। यह विधि अधिक खर्चीली है।

वायु प्रदूषण रोकने के उपाय (Measures to control Air Pollution)–

वायु प्रदूषण रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

(1) कानून एवं सामाजिक चेतना– वायु प्रदूषण रोकने के लिए औद्योगिक सैप्टिक इकाइयों, यातायात वाहनों एवं दैनिक उपयोग की वस्तुओं पर कानून बनाकर प्रदूषण नियंत्रण करना आवश्यक है। साथ ही सामाजिक चेतना जागृत करके सभी को वायु प्रदूषण के कारकों को नियंत्रित करने में जागरुक करना आवश्यक है। कूड़े–करकट को गाढ़ना, मरे पशुओं को गाढ़ना, सड़ते हुए कचरे को मिट्टी से ढकना, धूम्रपान वर्जित करना वायु प्रदूषण रोकने हेतु सामाजिक चेतना के अंग साबित हो सकते हैं।

जून 1972 में राष्ट्रसंघ द्वारा स्टाकहोम (स्वीडन) में अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्स का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में औद्योगिरण के फलस्वरूप पर्यावरण में बढ़ते वायु प्रदूषण पर चर्चा के बाद विभिन्न राष्ट्रों को कानून बनाने की सलाह दी गई। वायु प्रदूषण के नियंत्रण एवं इसकी रोकथाम के लिए देश में वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम, 1981 बनाया गया जो राष्ट्रपति की सहमति के बाद 16 मई 1981 से लागू किया गया। इसके पश्चात् इस अधिनियम का संशोधित रूप वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) संशोधन अधिनियम–1987 लाया गया जो 1 अप्रैल 1988 से लागू किया गया।

2. प्रचार माध्यम– रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र एवं अन्य प्रचार माध्यमों के द्वारा वायु प्रदूषण से होने वाले खतरों से बचने के उपायों का प्रचार करना चाहिये, जिससे वायु प्रदूषण को रोकने में सहायता मिल सके।

3. दहन हेतु प्रौद्योगिकी सुधार– घरों में खाना पकाने के लिए कम धुएँ वाले ईंधन काम में लाने चाहिए, जैसे– कूकिंग गैस, विद्युत उपकरण, बायो गैस आदि। विद्युत शवदाह गृहों का विकास आवश्यक है।

4. कार्बनिक पदार्थों के सड़ाव की उचित व्यवस्था– फसलों, पेड़–पौधों, पशुओं तथा मनुष्य के अवशेष एवं उत्सर्जित पदार्थों को भली–भाँति गड्ढे बनाकर वायवीय व्यवस्था द्वारा

AGRIGYAN.IN

सड़ाना चाहिए जिससे दूषित गैसें पैदा न हों। गाँवों में गोबर से बायो गैस का निर्माण करने से जलाने के लिए गैस तथा खेत के लिए अच्छा खाद प्राप्त होता है।

5. परिवहन वाहनों के धुँएं पर नियंत्रण– परिवहन के वाहन सुधरे इंजन के कम धुँआ उगलने वाले प्रयोग में लाने चाहिए। डीजल का प्रयोग संयोजी पदार्थ के साथ मिलाकर करना चाहिए। वाहनों द्वारा प्रदूषण की निर्धारित सीमा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वाहनों की कार्यशीलता आदि के सुधार से वायु प्रदूषण कम किया जा सकता है। विद्युत एवं बैटरी चालित इंजनों का विकास एवं प्रयोग भी आवश्यक है।

6. शहरों में यातायात व्यवस्था– शरों में कम से कम वाहनों के प्रवेश के लिए बाह्य पथ निर्माण आवश्यक है तथा समानान्तर सड़क बनाने से अनावश्यक रुकने पर नियंत्रण से वायु प्रदूषण रोका जा सकता है।

7. सेप्टिक प्रसाधन गृहों का निर्माण– मल–मूत्र विसर्जन हेतु गाँव एवं शहरों से अधिकाधिक सेप्टिक प्रसाधन गृहों का निर्माण आवश्यक है जिससे वायु प्रदूषण पर नियंत्रण पाया जा सके। इससे उत्पन्न गैस को ईंधन के रूप में भी काम में लाने हेतु मनोवृत्ति परिवर्तन आवश्यक है।

8. परमाणु विस्फोट एवं परीक्षण पर नियंत्रण– अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परमाणु विस्फोट एवं परीक्षण पर नियंत्रण हेतु कदम उठाने चाहिए, जिससे विस्फोट पदार्थों के वायुमण्डलीय प्रदूषणजनित खतरों से जीव जगत् को बचाया जा सके।

9. सघन वृक्षारोपण– यह सर्वविदित है कि वृक्ष वायु प्रदूषण को रोकने में सबसे अधिक उपयोगी भूमिका अदा करते हैं। अतः वृक्षारोपण हेतु जनजागृति अत्यन्त आवश्यक है। बेकार खाली पड़ी भूमि पर वृक्षारोपण करके वायु प्रदूषण को रोका जा सकता है। शहरों में भी योजनानुसार सड़कों के दोनों ओर पौधे लगाने चाहिये एवं अच्छे पार्क विकसित करने चाहिये। पीपल का पौधा जीवनकाल में 1713 किलोग्राम ऑक्सीजन देता है जो 60,000 मनुष्यों के लिए पर्याप्त है।

10. विषैले रसायनों का कम प्रयोग– फसलोत्पादन में बी.एच.सी., एल्ड्रिन एवं अन्य वायु प्रदूषण फैलाने वाले रसायनों का कम प्रयोग करना चाहिए। डी.डी.टी. का भी अत्यधिक प्रयोग नहीं रना चाहिए।

11. कारखानों की चिमनियों पर विद्युत अवक्षेपकों का प्रयोग– कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ से वायु प्रदूषण पर नियंत्रण करने हेतु विद्युत अवक्षेपक प्रयोग में लाने चाहिए जिससे वायु प्रदूषण कम हो सके।

12. उद्योगों में श्रमिकों के लिए नकाब का प्रयोग– उद्योगों में प्रदूषित वायु के खतरे से बचने के लिए श्रमिकों को विशेष प्रकार के नकाब (Mask) का प्रयोग करना चाहिए, जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पड़े। प्रयोगशालाओं में जहाँ विषैली गैसें उत्पन्न हों वहां भी नकाब का प्रयोग आवश्यक है।

(3) मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)–

आज से लगभग 50 वर्ष पहले सिंचाई के साधन कम थे, उन्नतिशील फसलों की जातियों का अभाव था, किसान सालभर में औसतन एक फसल लेते थे तथा सिंचित्र क्षेत्रों में दो–तीन वर्ष के अन्तराल से गोबर की खाद डालते रहते थे। परन्तु आबादी बढ़ने से अधिक खाद्यान्न की पूर्ति हेतु सिंचाई के साधनों में वृद्धि हुई, अधिक पैदावार देने वाली जातियों का विकास हुआ और फसलों की आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रखकर रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों आदि का भी विकास हुआ। अतः अधिक क्षेत्र पर खेती की जाने लगी एवं वर्ष में 2–3 फसलें ली जाने लगी।

मृदा खेती के अतिरिक्त भी विभिन्न उपयोगों में आने लगी। परिणामस्वरूप मृदा प्रदूषण की समस्या पैदा हुई। अतः बाह्य एवं आंतरिक कारणों से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में ऐसा अवांछनीय परिवर्तन जिससे वह मनुष्य एवं अन्य जीव तथा पेड़–पौधों के लिए अनुपयोगी हो जावे, मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण के स्रोत (Sources of Soil Pollution)–

(1) घरेलू अपशिष्ट (Domestic Wastes)

(2) नगर पालिका अपशिष्ट (Municipal Wastes)

(3) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Wastes)

(4) कृषि अपशिष्ट (Agricultural Wastes)

(5) अन्य स्रोत (Other Wastes)

(1) घरेलू अपशिष्ट (Domestic Wastes)– घरेलू अपशिष्ट पदार्थों में मुख्य रूप से घर की सफाई से सम्बन्धित जैसे–धूल, कागज, कपड़ों के टुकड़े, प्लास्टिक के टुकड़े, कोयला, राख, लकड़ी, सूखी पत्तियाँ, सजावट का बेकार सामान, बर्तनों की धुलाई के समय प्रयोग किये जाने वाले पदार्थ, टूटे फर्नीचर के बेकार पदार्थ, भोजन से सम्बन्धित पदार्थ, जैसे–सब्जी, दाल, चावल, फल, फलों के बीज, सब्जियों की पत्तियाँ, अनाज, दाल या अनाज की घुनयुक्त धूल एवं कूड़ा–करकट आदि सम्मिलित हैं।

(2) नगर पालिका अपशिष्ट (Municipal Wastes)– शहरों एवं कस्बों की सफाई के समय विसर्जित कूड़ा–करकट,

AGRIGYAN.IN

मल—मूत्र, दुकानों, कारखानों, मुर्गीपालन केन्द्र, पशुओं के विसर्जित पदार्थ, मृत शरीर, शौचालय के अन्य अपशिष्ट पदार्थ, अस्पताल एवं शिक्षा संस्थाओं के विसर्जित पदार्थ प्रमुख रूप से विसर्जन के बाद मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(3) औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Wastes)— विभिन्न प्रकार के उद्योग, जैसे—साबुन, कपड़ा, फल, कागज, रबर, चर्म, धातु, पैट्रोल, प्लास्टिक, रसायन, लकड़ी, इस्पात आदि के अपशिष्ट पदार्थ ठोस, द्रव रूप में अपशिष्ट पदार्थ मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(4) कृषि अपशिष्ट (Agricultural Wastes)— फसलों के अवशेष जैसे—जड़, तना, पत्तियाँ, फूल आदि खरपतवार, कार्बनिक खादों का प्रयोग में न लाया गया भाग, फसलों का भंडारण हेतु प्रयोग में लाई जाने वाली बेकार बोरी आदि मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(5) अन्य स्रोत (Other Wastes)— फसलों को बीमारियों, कीड़े—मकोड़ों एवं खरपतवारों से बचाने के लिए अनेकों प्रकार के रसायन प्रयोग में लाये जाते हैं जिन्हें मिट्टी में मिलाया जाता है, या फसलों पर छिड़का जाता है। मृदा कटाव के समय एक स्थान की मिट्टी को दूसरे स्थान पर पहुंच कर एकत्र होते जाना, धातुओं एवं खनिजों की खुदाई के समय शेष विस्थापित अपशिष्ट एवं विभिन्न विस्फोटक गतिविधियों के पदार्थ आदि मृदा को प्रदूषित करने के अन्य स्रोत है। प्रदूषित जल से सिंचाई करने से भी मृदा में अम्लीयता एवं क्षारीयता पैदा होती है।

मृदा प्रदूषण के प्रकार (Types of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण दो प्रकार के पाये जाते हैं :—

(1) रासायनिक प्रदूषण (Chemical Pollution)

(2) जैविक प्रदूषण (Biological Pollution)

(1) रासायनिक प्रदूषण (Chemical Pollution)— फसलों से अधिक पैदावार लेने के लिए उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, कवकनाशक आदि प्रयोग में लाये जाते हैं जिनमें से कुछ अधिक विषैले होते हैं, जैसे— आर्सेनिक, लैड यौगिक, एल्ड्रिन आदि एवं कुछ कम विषैले होते हैं जिनका हानिकारक प्रभाव प्रयोग की जाने वाली मात्रा पर निर्भर करता है, जैसे—डी.डी.टी., पैराथियान, बी.एच.सी., मरक्यूरिक यौगिक आदि।

(2) जैविक प्रदूषण (Biological Pollution)— मृदा, जल, कीचड़, मानव एवं पशुओं के मलमूत्र में अनेकों प्रकार के विषैले जीवाणु पाये जाते हैं जिनसे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे—

(अ) क्लास्ट्रीडियम बॉट्यूलिनम (Clostriduim botulinum)— ये मिट्टी, पानी, कीचड़ आदि में पाये जाते हैं। ये भोज्य पदार्थ जैसे—मांस, मछली, सीलबन्द भोज्य पदार्थों को विषाक्त कर देते हैं जिनसे स्नायु तन्त्र पर प्रभाव, सिर दर्द, कब्ज, गर्दन में लकवा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(ब) क्लास्ट्रीडियम परफ्रिजेन्स (Clostriduim peffringens)— ये मिट्टी, पशुओं का मलमूत्र, मनुष्य के मल में पाये जाते हैं। इनसे लगभग सभी प्रकार के भोज्य पदार्थ खराब होने की संभावना बनी रहती है जिनके सेवन से उल्टी आना, शरीर में दर्द एवं पेचिस के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(स) स्टेफाइलो कॉकस एवं माइक्रोकॉकस (Staphylococcus and Micrococcus)— ये कफ, थूक, घाव आदि में उत्पन्न हो जाते हैं। इनसे कस्टर्ड, क्रीम, दूध से बने पदार्थ, मांस, मछली आदि प्रभावित होते हैं। उल्टी आना, सिर दर्द, बुखार, अधिक पसीना आना आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

(द) साल्मोनेला (Salmonella)— ये मनुष्य तथा पशुओं के मलमूत्र में पैदा होते हैं तथा सभी प्रकार के भोजन को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव से उल्टी आना, प्यास लगना, घबराहट, सिर दर्द आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

(य) बैसीलस सेरियस (Bacillus Cereus)— इसका स्रोत मिट्टी है। दूध, अण्डा, कस्टर्ड आदि के सेवन से उल्टी आना, डायरिया हो जाना, पेट में मरोड़ उठना आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

(र) कवक संदूषण (Fungal Contamination)— कवक भी भोज्य पदार्थों पर उगकर उन्हें हानिकारक बना देते हैं, जैसे—

एस्परजिलस फ्लेवस (Asperillus Flavus)— प्रोटीन प्रचुरता वाले भोज्य पदार्थ, जैसे— सोयाबीन, मूँगफली आदि पर यह पनपते हैं और ऐसे पदार्थों के सेवन से यकृत सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।

फ्युजेरियम स्पोरोट्राइकोइड्स (Fusarium Sporotrichoides)— ये जौ, जई, गेहूँ आदि अनाजों पर पैदा हो जाता है। इस प्रकार के प्रदूषित पदार्थों के प्रयोग से हड्डियों का गलन रोग पैदा हो जाता हैं।

पेनीसीलियम (Penicillium)— इसकी अनेकों प्रजातियाँ यकृत रोग, ट्यूमर कैंसर आदि को फैलाती है।

AGRIGYAN.IN

मृदा प्रदूषण के प्रभाव (Effect of Soil Pollution)–

विभिन्न माध्यमों से प्रदूषित मृदा मनुष्य, जीव–जन्तु एवं वनस्पतियों पर अनेकों हानिकारक प्रभाव डालती हैं, जैसे :

(1) मृदा गुणों पर प्रभाव (Effect of Soil Properties)– वानस्पतिक आवरण के नष्ट होने से मृदा अपरदन तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में वृद्धि होती है। मृदा में पोषक तत्वों की कमी आ जाती है एवं जलधारण क्षमता कम हो जाती है। अत्यधिक एवं लगातार रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में क्षारीयता अथवा अम्लीयता बढ़ती है जिससे सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता घट जाती है, वायु संचार कम हो जाता है, पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। अधिक मात्रा में विषैले पदार्थों के समावेश से मृदा में इनकी सान्द्रता हानिकारक हो जाती है। अतः प्रदूषण के फलस्वरूप मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों का ह्रास होता है।

(2) फसलों पर प्रभाव (Effect on Crops)– प्रदूषित मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में ह्रास होने से बीजों का अंकुरण एवं पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है। मृदा में वायु संचार में व्यवधान उत्पन्न होने से पौधों की जड़ों एवं जीवाणुओं के श्वसन में व्यवधान उत्पन्न होता है जिससे पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है। मृदा क्षरण के फलस्वरूप पोषक तत्व बह जाते हैं, विभिन्न रसायनों के अधिक प्रयोग से मृदा pH मान बदल जाता है, परिणामस्वरूप पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। मृदा में विषैले पदार्थों के अधिक संग्रहीत हो जाने से इनका पौधों में भोजन के साथ समावेश होने से फसलों में जहरीला प्रभाव (Toxicity) दिखाई देने लगता है। अतः पौधों के लिए पोषक तत्व एवं जल की असामान्य उपलब्धता फसलोत्पादन को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। फसलों एवं फलों की गुणवत्ता गिर जाती है।

(3) मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effect on Human and other Animals)– मृदा में प्रदूषित पदार्थों के समावेश से विभिन्न प्रकार के रोग फैलाने वाले रोगाणुओं की वृद्धि होती है जिससे बुखार, पेचिश, हैजा, मलेरिया, पीलिया आदि बीमारियां फैलती हैं। अपशिष्टों के हानिकारक विषैले तत्व भूमि में एकत्र हो जाते हैं जिससे भूमि प्रदूषित हो जाती है। ऐसी भूमि में उगाई गई फसलों और फलदार पौधों के उगाने से ये तत्व मनुष्यों तथा पशुओं के भोजन द्वारा औद्योगिक इकाइयों, सार्वजनिक शौचालयों एवं सार्वजनिक संस्थानों के विसिर्जत अपशिष्ट मृदा में पड़े रहने पर सड़–गल कर वातावरण में दुर्गन्ध फैलाते हैं जिससे श्वस हेतु प्रदूषित वायु प्राप्त होती है जो मनुष्य के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालती है। खाने–पीने की वस्तुएं भी ऐसे वातावरण में प्रदूषित होकर बीमारियों का माध्यम बनती है। मक्खी, मच्छर आदि हानिकारक कीड़े–मकोड़े अधिक पनपने से बीमारियाँ फैलती हैं।

(4) आर्थिक हानि (Financial Losses)– प्रदूषित मृदा को ठीक करने में व्यय होता है तथा प्रदूषित उत्पादों द्वारा फैली बीमारियों की रोकथाम पर अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है। अधिक रसायनों के प्रयोग से पैदा की गई फसलों एवं फलों की गुणवत्ता बिगड़ जाने के खतरे उत्पन्न होने से बाजार में कीमत भी कम मिलती है। खाद्य पदार्थों का आंतरिक संगठन प्रभावित होने से कभी–कभी संरक्षण सम्बन्धी परेशानियाँ भी आने लगती हैं। मृदा प्रदूष से एक बार मृदा उत्पादकता में कमी आने से उसे पुनः लाभदायक बनाना कृषि विशेषज्ञों के सामने एक चुनौतीपूर्ण दायित्व की समस्या का कारण बनता है।

मृदा प्रदूषण नियंत्रण के उपाय (Measures to Control Soil Pollution)–

मृदा जीवधारियों एवं वनस्पतियों के लिए अस्तित्व का प्रमुख माध्यम है। अतः इसे उपयोगी बनाये रखने हेतु प्रदूषण से बचाने के कुछ उपाय नीचे बताये गये हैं–

(1) विभिन्न माध्यमों से प्राप्त ठोस अपशिष्ट पदार्थों से मृदा को प्रदूषण से बचाने हेतु निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं–

(अ) भू–निक्षेपण (Land disposal)– इस विधि के अन्तर्गत अपशिष्ट पदार्थों को खुला ढेर (Open dump) के रूप में अथवा स्वच्छता भूमि भरण (Sanitary Land filling) हेतु व्यवस्थित करने से मृदा प्रदूषण को बचाया जाता है। खुला ढेर विधि में कूड़ा–करकट, कचरा आदि अपशिष्ट पदार्थ खुले स्थान पर एकत्र किये जाते हैं। वहीं पर या तो वर्षात् के पानी के प्रभाव से सड़–गल जाते हैं या आग लगाकर नष्ट किये जाते हैं। कभी–कभी खुले ढेरों को दबाकर कार्बनिक पदार्थों को सीमित स्थान पर ही संग्रहित करते हैं। यह विधि सस्ती एवं सरल है परन्तु अपशिष्ट में पैदा होने वाले रोगाणु जल के साथ स्थानान्तरित होकर रोग फैलाते हैं। स्वच्छता भूमि–भरण विधि में अपशिष्ट पदार्थों को किसी निचली जगह में पत्तों के रूप में एकत्र करते जाते हैं। वहीं पर उन्हें आवश्यकतानुसार रौलर से दबाते भी रहते हैं। कार्बनिक पदार्थ सड़कर खाद का काम देते हैं तथा जमीन भी समतल हो जाती है। फिर भी अवशिष्ट पदार्थों के सड़ने से पैदा हुई दुर्गन्ध से वातावरण प्रदूषित होता है और आस–पास बीमारियाँ फैलने की संभावना बनी रहती है। बड़े शहरों में यह विधि विशेष रूप से कम में लायी जाती हैं।

AGRIGYAN.IN

(ब) भस्मीकरण (Bruning)– बड़े–बड़े शहरों में इस विधि में भस्मीकरण यन्त्र द्वारा अपशिष्ट पदार्थों को जलाकर नष्ट किया जाता है। इसमें ठोस अपशिष्ट पदार्थ का लगभग 80 प्रतिशत भाग जलकर राख बन जाता है। राख को आसानी से खेतों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। खर्चीली विधि होने के कारण यह अधिक प्रचलित नहीं है।

(स) पुनः चक्रीकरण (Re-cycling)– भू–निक्षेपण विधि में अपशिष्ट से अलग किये जाने वाले पदार्थ निकाले जाते हैं। परन्तु पुनः चक्रीकरण विधि में विभिन्न पदार्थ क्रमशः प्राप्त किये जाते हैं। इस विधि के अन्तर्गत कम्पोस्ट बनाना (Composting), दारण (Rendering), भंजक आसवन (Destructive distillation) एवं व्यवसायिक मुक्तीकरण (Industrial Selvaging) प्रमुख हैं।

कम्पोस्ट बनाने हेतु मानव–मलमूत्र, कूड़ा–करकट आदि आबादी से दूर निश्चित आकार के गड्ढों में एकत्र करते हैं जहाँ पर वे जैविक अपघटन द्वारा उपयोगी खाद में बदल जाते हैं। दारण विधि में पशुओं के अवशेष, वसा, हड्डी, रक्त आदि को पकाकर चर्बी प्राप्त करते हैं तथा साथ ही प्रचुर प्रोटीनयुक्त अंश वाला पदार्थ भी प्राप्त होता है।

भंजक आसवन विधि में अपशिष्ट पदार्थों को वायु की अनुपस्थिति में ताप द्वारा अपघटित किया जाता है जिससे उपयोगी पदार्थ अलग–अलग हो जाते हैं। राख, धूल, कंकड़–पत्थर अलग हो जाने के बाद शेष पदार्थ को यंत्र चालित पट्टों की मदद से कक्षों में भेजा जाता है, जहाँ पर धातु, काँच, प्लास्टिक आदि अलग–अलग कर दी जाती हैं।

(2) घरेलू अपशिष्ट पदार्थों को विधिवत् एकत्र करना चाहिये जिसे बाद में अन्यत्र स्थानान्तरित करके जगह–जगह प्रदूषण को रोका जा सकता है।

(3) शहरों के अपशिष्ट पदार्थों को रोजाना एकत्र करके निश्चित जगह पर एकत्र करके ढक देना चाहिए। खुले स्थानों पर शौच पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए तथा जगह–जगह स्वच्छ आधुनिक सुलभ शौचालय बनवाने चाहिए जिससे प्रदूषण से बचा जा सके। नगरपालिकाओं को जगह–जगह कम्पोस्ट बनाने की व्यवस्था, कूड़ा–करकट एकत्र करने के कूड़ेदान, अपशिष्ट स्थानान्तरित करने के लिए समुचित यन्त्रों की व्यवस्था करते रहना चाहिए।

(4) औद्योगिक संस्थानों में अपशिष्ट पदार्थों को पर्याप्त उपचार के बाद ही विसर्जित करना चाहिए। अपशिष्ट पदार्थों के बिना उपचार के विसर्जित करने पर पूरी तरह से वैधानिक रूप से प्रतिबन्ध आवश्यक है।

(5) कृषि के अपशिष्ट पदार्थों को खाद के गड्ढों में नियमित रूप से डालना चाहिए जिससे वे पुनः खेतों के लिए उपयोगी बन सके।

(6) विभिन्न रसायनों का सीमित प्रयोग आवश्यक है। ऐसे रसायन प्रयोग में लाये जाये जिनका जैविक अपघटन आसान हो। अधिक विषैले रसायनों के प्रयोग पर प्रतिबंध आवश्यक है।

(7) भूमि कटाव, भू–उत्खनन, भूमि का क्षारीय या अम्लीय बनाना, भूमिगत परमाणु विस्फोट आदि पर प्रारम्भ से ही नियंत्रण हेतु कदम उठाने चाहिए।

(8) भूमि प्रदूषण से होने वाले रोगों के नियंत्रण की सामयिक व्यवस्था आवश्यक है।

(9) भूमि प्रदूषण रोकने हेतु प्रचार माध्यमों के द्वारा जन–जागृति अत्यन्त आवश्यक है। समय–समय पर सर्वेक्षण के द्वारा नागरिकों को प्रदूषण की सीमा से अवगत कराते रहना भी आवश्यक है। इस कार्य हेतु क्षेत्रीय पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण प्रयोगशालाओं का विस्तार हितकर सिद्ध होगा।

(10) सिंचाई एवंज ल–निकास की व्यवस्था क्षेत्र विशेष के अनुसार होनी चाहिए जिससे जल के माध्यम से एक स्थान के लवण आदि दूसरे स्थान पर एकत्र होकर मृदा को अनुत्पादक न बनायें। भूमि की उर्वरता को बनाये रखने हेतु कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग, उपयुक्त फसल प्रणाली एवं भूपरिष्करण क्रियाएं अपनाना भी आवश्यक हैं।

(4) ध्वनि प्रदूषण (Sound Pollution)

कल–कारखाने, परिवहन, मनोरंजन के साधन एवं मानव शोर वातावरण को असहनीय बना देते हैं जो ध्वनि प्रदूषण के कारण बनते हैं। अतः किसी साधन से निर्गत ध्वनि जब असह्य हो जाती है तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

सामान्यतः 40–50 db (Decibles) तक की ध्वनि कर्णप्रिय तथा 70–75 db तक की ध्वनि सहनीय होती है। भारतीय मानक संस्थान के अनुसार 90 db की ध्वनि मानक ध्वनि मानी जाती है, इससे अधिक ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत मानी जाती है।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत (Sources of Sound Pollution)–

(1) प्राकृतिक स्रोत– प्राकृतिक स्रोतों से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं, जैसे–विद्युत गर्जन, बादल की गर्जन,

AGRIGYAN.IN

तूफान एवं हवायें, जल वृष्टि, भूकम्प, ज्वार–भाटा, ज्वालामुखी का फूटना आदि।

(2) कृत्रिम स्रोत– मानव सुविधाओं के लिए विकसित साधनों से तरह–तरह की ध्वनियाँ पैदा होती हैं, जैसे–उद्योग–धन्धों की मशीनों द्वारा, स्थल परिवहन, वायु परिवहन एवं जल परिवहन के साधनों द्वारा।

(3) मनोरंजन के साधन एवं मानव कार्यकलाप– मनोरंजन के विभिन्न साधन जैसे–सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, लाउडस्पीकर, स्टीरियो, वाद्य यंत्र आदि ध्वनि प्रदूषण के कारण हैं। इसी प्रकार मनुष्यों द्वारा विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों के आयोजनों में ध्वनि प्रदूषण फैलता है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव (Effectcs of Sound Pollution)–

ध्वनि प्रदूषण मानव स्वास्थ्य एवं व्यवहार पर प्रभाव डालता है। ध्वनि प्रदूषण मुख्यतः चार प्रकार से व्यवधान पहुँचाता हैं–

(1) श्रवण शक्ति स्तर पर प्रभाव

(2) शारीरिक कार्य प्रणालियों पर प्रभाव

(3) मानव आचरण पर प्रभाव

(4) आर्थिक प्रभाव

(5) रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radio Active Pollution)–

प्रकृति में कुछ तत्व ऐसे पाए जाते हैं जिनसे विशेष प्रकार के विकिरण उत्सर्जित होते रहते हैं जिनमें गामा विकिरण अन्य एल्फा एवं बीटा की तुलना में अधिक भेदन क्षमता रखती है। नाभिकीय विस्फोटों से भी रेडियोधर्मी पदार्थों का विसर्जन होता है। रेडियोधर्मी पदार्थों से भूमि, जल, वायु सभी प्रभावित होते हैं।

कृषि रसायनों द्वारा मृदा, जल एवं वायु प्रदूषण (Pollution of Soil, Water and Air by Agrochemicals)–

कृषि में विषैले कृषि रसायनों जैसे शाकनाशियों, व्याधिनाशियों व पादप नियामकों का अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप मृदा उर्वरता पर बुरा असर पड़ रहा है। इन रसायनों के प्रयोग से खरपतवार, कीट व रोग तो नियन्त्रित हो जाते हैं, परन्तु इन जहरीले कृषि रसायनों का मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, जिससे मृदा उर्वरता कम हो जाती है।

किसानों को इन रसायनों के प्रयोग की सही जानकारी नही होने के कारण आज उर्वर भूमि बंजर भूमि में तब्दील होती जा रही हैं। खेती में प्रयोग हो रहे इन कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग का प्राकृतिक संसाधनों– भूमिगत जल, सतही जल, मृदा, जीव–जन्तुओं और पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इसमें प्रमुख कृषि रसायन निम्नलिखित हैं-

(i) रासायनिक उर्वरकों द्वारा प्रदूषण

(ii) नाशी रसायनों द्वारा प्रदूषण

(i) रासायनिक उर्वरकों द्वारा प्रदूषण– वर्तमान कृषि में उर्वरकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज कृषि में उर्वरकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया जा रहा है। इन उर्वरकों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम के उर्वरक प्रमुख हैं। फसलें नाइट्रोजन का उपयोग 25–70 प्रतिशत तथा फॉस्फोरस का उपयोग 5–30 प्रतिशत ही कर पाती हैं इनके शेष बचे तत्त्व मृदा में रहते हैं। इनके स्वरूप बदलकर वायु, जल तथा भूमि में बने रहते हैं। नत्रजन उर्वरकों को लम्बे समय तक प्रयोग करने से मृदा अम्लीय हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाइट्रेट मृदा में रिसाव द्वारा भूमि जल में मिल जाती है। जल में नाइट्रेट की मात्रा 50 मि.ग्रा. प्रति लीटर से अधिक होती है तो वह पशुओं एवं मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। ऐसा देखा गया है कि जब पानी में 10 मि.ग्रा. प्रति लीटर फॉस्फोरस और 200 – 300 मि.ग्रा. प्रति लीटर से अकार्बनिक नाइट्रोजन कम होती है तो शैवाल की वृद्धि रुक जाती है।

भारी तत्त्व संचयन–

इन उर्वरकों में कुछ भारी तत्त्व As, Cd, Cu, Hg, Mn, Ni, Pb, U, Zn इत्यादि फॉस्फोरस वाले उर्वरकों में पाये जाते हैं ये तत्त्व रॉक फॉस्फेट में प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं तथा रॉक फॉस्फेट से उर्वरक बनते हैं। इनमें सीसा एवं कैडमियम ज्यादा नुकसान दायक होते हैं।

ये तत्त्व पौधों के अवशोषण के पश्चात खाद्य श्रृंखला से मानव एवं पशुओं के शरीर में चला जाता है। इसकी निश्चित मात्रा से अधिक होने पर गुर्दों द्वारा काम न करना, आंते एवं आमाशय का कमजोर होना, अति तनाव वाली बीमारियां हो जाती हैं।

सारणी–उर्वरकों में उपस्थित शीशा एवं कैडमियम की मात्रा (ppm)

क्र.सं.	उर्वरक का नाम	शीशा (Pb)	कैडमियम (Cd)
1.	रॉक फॉस्फेट	1135	303
2.	सिंगल सुपर फॉस्फेट	6098	187
3.	डाई अमोनियम फॉस्फेट	188	109
4.	नाइट्रो फॉस्फेट	313	89
5.	कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	200	06

AGRIGYAN.IN

रेडियोएक्टिव पदार्थ–

फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों में यूरेनियम, थोरियम, रेडियम इत्यादि रेडियोएक्टिव पदार्थ पाये जाते हैं। ये पदार्थ भी पर्यावरण प्रदूषण फैलाते हैं। इन पदार्थों से प्राणियों में आनुवंशिक कुप्रभाव उत्पन्न होता है, जिससे जीवों में प्रतिरोधक क्षमता में कमी, जनन क्षमता में कमी होने लगती है। इससे कई प्रकार के रोग जैसे– बालों का झड़ना, हाथ पैरों में जलन, असमय बुढ़ापा, तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोग, कैंसर इत्यादि बीमारियां हो जाती हैं।

नाइट्रेट वाले पदार्थ–

नाइट्रोजन वाले उर्वरकों से शेष नाइट्रेट के जल में मिलने से जल प्रदूषण होता हैं। नाइट्रेट युक्त जल के उपयोग से बच्चों में मेथेमोग्लोबिनेमिया ब्लू बेबी सिंड्रोम रोग, नाइट्रेट की अधिक सान्द्रता से कैंसर, मानसिक कमजोरी, अतितनाव, शीघ्र मृत्यु इत्यादि हो सकती है। नाइट्रेट (NO_3^-) के नाइट्राइट (NO_2^-) में बदलने से आमाशय पर कुप्रभाव पड़ता है। नाइट्राइट एवं एमीन्स से नाइट्रोसोअमिन बनता है, जिससे कैंसर हो सकता है।

जल प्रदूषण–

तालाबों एवं बड़े जलाशयों में खेतों में प्रयुक्त नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम युक्त उर्वरक वर्षा जल के साथ बहकर जाने से जलीय पौधों की वृद्धि एवं विकास अधिक होता है। इन जलीय पौधों की अत्याधिक वृद्धि से जलराशियों में ऑक्सीजन की कमी होने लगती है। ऑक्सीजन की कमी से जलीय जन्तु एवं पौधे मरने लगते हैं। ऐसे जल में दुर्गंध आने लगती है, जो पीने एवं अन्य उपयोग हेतु उपयोगी नहीं रहता है। अतः आवश्यकता से अधिक उर्वरकों का प्रयोग खेतों में नहीं करना चाहिए।

वायु प्रदूषण–

उर्वरकों के प्रयोग से खेतों में नाइट्रस ऑक्साइड, अमोनिया इत्यादि बनती है। सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों से बचाव करने वाली ओजोन से यह नाइट्रस ऑक्साइड, अमोनिया क्रिया करके ओजोन को नष्ट करती है। उर्वरकों के प्रयोग एवं कार्बनिक नाइट्रोजन के खनिजन एवं विनाइट्रीकरण से ऐसी गैसों की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ने से वायु प्रदूषण होता है।

हालांकि इनके द्वारा क्लोरोफ्लोरो कार्बन यौगिकों की तुलना में नुकसान कम होता है। ओजोन के नष्ट होने से सूर्य की हानिकारक किरणों का प्रभाव पौधों, पशुओं एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ता हैं इन हानिकारक विकिरणों से चर्मरोग, कैंसर इत्यादि भयंकर रोग होते हैं। अतः इससे बचाव हेतु उर्वरकों का संतुलित प्रयोग किया जाना चाहिए।

(ii) नाशी रसायनों द्वारा प्रदूषण–

वर्तमान में किसान अपनी फसल, फल, सब्जियों की अच्छी पैदावार प्राप्त करने हेतु कीटनाशी, रोगनाशी, खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग अन्धाधुन्ध रूप से कर रहे हैं। इन रसायनों का प्रयोग भारत में लगातार प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है।

यहां के अशिक्षित किसान इन नाशी रसायनों का अत्यधिक प्रयोग कर अपनी फसलों को बचाकर उपज बढ़ाता है। लगातार इन रसायनों के प्रयोग से वायु, जल तथा मृदा प्रदूषित हो रही है। चित्र द्वारा पीड़कनाशियों से पर्यावरण के घटक मृदा, जल एवं वायु में प्रदूषण का प्रदर्शन निम्न प्रकार प्रदर्शित हैं–

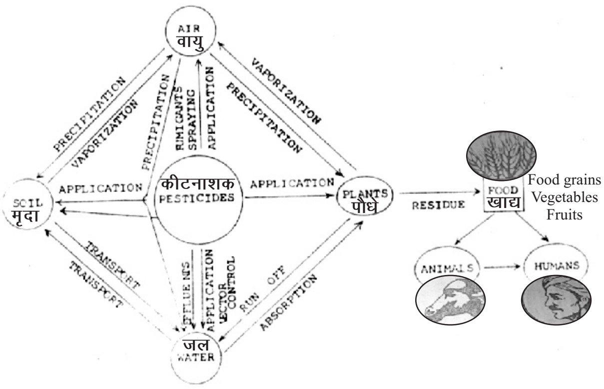

चित्र–पीड़कनाशियों द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण प्रदर्शन

वायु प्रदूषण–

प्रयोग के समय इन नाशी रसायनों के सूक्ष्म कण हवा को प्रदूषित करते हैं। वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसों से क्रिया करके वायु को प्रदूषित कर देते हैं। इनके कण श्वसन द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुंचकर स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इस प्रदूषण के कारण कई किसानों की मृत्यु तक हो जाती है। अतः संतुलित मात्रा में नाशी रसायनों का प्रयोग करना चाहिए तथा जैविक कीटनाशी रसायनों का इस्तेमाल अधिक करना चाहिए।

नाशी रसायनों का मृदा में संचयन–

कृषि कार्यों में लगातार कई वर्षों तक नाशी रसायनों के उपयोग के कारण मृदा में इनका संचयन होने लगता है। क्लोरीन युक्त कीटनाशी रसायनों का संचय अधिक होता हैं। इस प्रकार का संचयन होने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे खतरनाक कीटनाशी जैसे बी.एच.सी., डी.डी.टी., एल्ड्रिन इत्यादि को सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया है। देश के विभिन्न हिस्सों से लिये गए मृदा नमूनों में कीटनाशियों का स्तर अधिक पाया गया है।

जल में संचयन–

नाशी रसायनों का लगातार खेतों में प्रयोग से वर्षा जल द्वारा अपक्षालन, सतह पर वर्षा जल के साथ बहकर जाने,

AGRIGYAN.IN

औद्योगिक संस्थानों का बहिःस्त्राव इत्यादि से नाशी रसायन जल में पहुँचकर उसे प्रदुषित करते हैं। विभिन्न दुर्घटनाओं में नाशी रसायनों के बहने से भी वातावरण प्रदुषित होकर जल प्रदूषित होता है।

जैव श्रृंखला में शामिल होकर ये नाशी रसायन दुधारू पशुओं और मनुष्यों तक पहुंच जाते हैं। आई. टी. आर. सी., लखनऊ द्वारा समय–समय पर गंगा, कावेरी एवं अन्य नदियों के जल के नमूनों का विश्लेषण करने पर डी.डी.टी., एण्डोसल्फान, मेलाथियान, पेराथियोन, डाइमेथोएट एवं एथिओन के अवशेष पाये गये हैं।

खाद्य पदार्थों में संचयन–

बाजार में बिकने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थ कीटनाशकों के सम्पर्क में आते हैं। सब्जियों में तो आजकल इसका प्रयोग अत्यधिक हो रहा है। खाद्य श्रृंखला के दौरान इन कीटनाशियों का जैविक सांद्रण होता है। इनकी मात्रा खतरे से अधिक पायी जाती है।

मानव शरीर पर प्रभाव–

नाशी रसायनों के अवशेष मनुष्य के वसा, ऊतक, खून एवं दूध में पाये जाते हैं। कीटनाशकों का फसलों पर प्रयोग उनके स्थानान्तरण, प्रदूषित खाद्य पदार्थों के उपयोग से मानव शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इनके मानव शरीर में संचयन से कैंसर, सिरदर्द, चर्मरोग, एलर्जी, अन्धापन, अमाशय के रोग, आंखों के रोग, यकृतशोथ, कोलेस्ट्रॉल इत्यादि बीमारियां फैलती है।

अन्य प्रभाव–

मानव के साथ–साथ कई लाभदायक जीवों पर इनका प्रभाव पड़ता है, जिससे नुकसानदायक कीटों के साथ–साथ लाभदायक कीट जैसे– क्राइसोपर्ला, कॉक्सीनेला, मैना, मकड़ी, लेड़ी बर्ड बीटिल इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार परागण करने वाले कीट मधुमक्खियां कीटनाशियों से मर जाती हैं, जिससे परागण की क्रिया प्रभावित होती है। इस प्रकार के संग्रह किये गए शहद में भी कीटनाशियों के अवशेष पाये गये हैं।

उपर्युक्त कीटनाशियों की भांति विभिन्न रोग व बीजोपचार में काम आने वाले रसायनों जैसे– थायरम बॉवस्टिन, मैंकोजेब, जाइनेब, सल्फर इत्यादि फफूंदनाशी, एट्राजीन, सीमेजिन, आइसोप्रोट्यूरॉन, डेलापान इत्यादि खरपतवारनाशियों से पर्यावरण मृदा, जल, वायु प्रदूषित होते हैं। विभिन्न प्रकार के मृदा सुधारकों, भण्डारण इत्यादि में प्रयुक्त रसायन भी पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

केन्द्रीय जल स्वास्थ्य इंजिनियरिंग अनुसंधान संस्थान के अनुसार भारत में प्रति एक लाख व्यक्तियों में से 60 व्यक्तियों की मृत्यु टाइफॉइड, पेचिस, पीलिया से हो जाती है, जिसका प्रमुख कारण प्रदूषित जल है। निम्न सारणी में जल में पाये जाने वाले हानिकारक पदार्थ एवं तत्त्वों का प्रभाव संक्षिप्त में दर्शाया गया है–

सारणी– प्रदूषित जल के स्रोत एवं रोग

क्र.स.	जल प्रदूषित पदार्थ एवं हानिकारक तत्त्व	स्रोत	सम्भावित रोग
1.	घुलनशील एवं अघुलनशील कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ	जल से सम्बन्धित उद्योग	पाचन तन्त्र में विकार
2.	क्लोराइड	NaCl, वस्त्र, चमड़ा उद्योग	गुर्दे के रोग
3.	सल्फाइड	पैट्रोलियम शोधन एवं कपड़ा उद्योग	श्वसन रोग
4.	अमोनियम	उर्वरक उद्योग	श्वसन रोग
5.	जस्ता	विद्युत्त लेपन एवं धातुकर्म	गुर्दे के रोग
6.	पारा	NaOH, कीटनाशक, पैट्रोरसायन, टूटे थर्मामीटर, पारा, लेम्प उद्योग	हृदय एवं गुर्दे के रोग
7.	सीसा	खनन, स्वचालित जहाज	विषाक्त प्रभाव
8.	तांबा	उद्योगों से	शरीर क्रियात्मक अस्वभाविकताऐं

AGRIGYAN.IN

9.	यूरिया	उर्वरक उद्योग	पेट विकार
10.	तेल एवं ग्रीस	पैट्रोलियम शोधन, वस्त्र एवं चमड़ा उद्योग	पाचन तन्त्र विकार
11.	कीटनाशक पदार्थ	कीटनाशक उद्योग	चर्म रोग एवं हृदय रोग
12.	रंग एवं रंजक	कागज, चमड़ा, कपड़ा उद्योग	चर्म रोग

पीड़कनाशियों का मृदा में स्थायित्व एवं मृदा जीवों पर प्रभाव (Persistance of pesticides in soil and their effects on soil micro organisms):

पीड़कनाशी जो कीटों एवं खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं, का अधिकांश भाग मृदा में मिल जाता है। पीड़कनाशी का प्रभावी होना तथा उनके हानिकारक अवशेषों का बुरा प्रभाव उनके मृदा में रहने के समय पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ– डी.डी.टी. का कृषि योग्य मृदा में 3 साल तक स्थायित्व रहता है जबकि ऑरगेनो फॉस्फेट और कार्बामेट कीटनाशी कुछ दिन या कुछ माह तक ही स्थायित्व (persist) रहते हैं। कुछ कीटनाशकों का मृदा में स्थायित्व इस प्रकार हैं– हैप्टाक्लोर 9 वर्ष, एल्ड्रिन तथा डाइएल्ड्रिन 9 वर्ष, डी.डी.टी. 10 वर्ष, बी.एच.सी. 11 वर्ष, क्लोरोडेन 12 वर्ष, डाइयूरॉन 19 माह, एट्राजिन 18 माह, 2–4 डी 14 से 30 दिन तक मृदा में बनी रहती है। फसलों को उगाने से, रिसाव द्वारा एवं कार्बनिक पदार्थों के अपघटन के द्वारा पीड़कनाशी का स्तर धीरे–धीरे मृदा में कम होता रहता है। अधिक समय तक विषैले पीड़कनाशी के प्रभाव जीवधारियों के लिए घातक होते हैं।

विशेष प्रकार के हानिकारक जीवों को मारने के लिए विशिष्ट प्रकार के पीड़कनाशी का प्रयोग किया जाता है क्योंकि सभी प्रकार के हानिकारक जीव एक ही प्रकार के पीड़कनाशी से नहीं मरते। निमेटोडस के लिए धूम्रक अधिक प्रभावी होते हैं। माइट्स के लिए आर्गेनो–फॉस्फेट एवं क्लोरीनेटिड हाइड्रोकार्बन अधिक प्रभावी होते हैं। केंचुओं पर सिवाय कार्बामेट्स एवं निमेटोसाइड्स के अधिकतर कीटनाशक अप्रभावी होते हैं।

नाइट्रीकरण, नत्रजन स्थिरीकरण में भाग लेने वाले जीवाणुओं पर पीड़कनाशियों का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इन क्रियाओं पर खरपतवार नाशकों की तुलना में कीटनाशक एवं फंजाई नाशक अधिक हानिकारक पाए गए हैं। पीड़कनाशियों का प्रभाव मृदा जीवों पर कुछ समय तक ही प्रभावी होता है इसीलिए पीड़कनाशियों की सीमित एवं संतुलित मात्रा के प्रयोग से मृदा जीवों पर हानिकारक प्रभाव बचाया जा सकता है।

कृषि रसायनों के प्रयोग में ध्यान रखने योग्य सावधानियों एवं उनके हानिकारक प्रभाव से बचाव के उपाय :

कृषि रसायनों के प्रयोग में ध्यान रखने योग्य निम्नलिखित सावधानियाँ रखी जानी चाहिए –

(अ) उर्वरक सम्बन्धी –

1. उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करके।
2. पौधों की आवश्यकता से अधिक उर्वरकों का प्रयोग न करें।
3. नत्रजन युक्त उर्वरकों को किश्तों में आवश्यकतानुसार दें।
4. नत्रजन के मन्दगति उपलब्ध उर्वरकों का प्रयोग करें। 5. फॉस्फोरस व पोटेशियम वाले उर्वरकों का गहरी सतह में प्रयोग करें।
6. देशी खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट खादों का अधिक प्रयोग करें।
7. हरी खाद का प्रयोग करें।

(ब) भूमि प्रबन्धकीय –

1. गर्मी में गहरी जुताई करें जिससे हानिकारक जीवाणुओं के नष्ट होने के साथ–साथ उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है।
2. नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसलों की बुवाई करें।

AGRIGYAN.IN

3. फसल चक्र अपनाकर उर्वरकों का प्रयोग कम करें। ढ़लानदार खेतों में वेदिका, समोच्च रेखा पर खेती करें।
4. मिट्टी पलटने वाले हल से पहली जुताई करें जिससे फसल अवशेष के सड़ने गलने से उर्वराशक्ति बढ़ती है।

(स) नाशकीय सम्बन्धी –

1. नाशी रसायनों का आवश्कतानुसार कम से कम प्रयोग करें।
2. अधिक आवश्यक हो तो जैविक कीट रसायनों का प्रयोग करें।
3. पौध संरक्षण हेतु समन्वित प्रबन्ध करें।
4. प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें जिससे उन पर कीटों क प्रभाव कम हो।
5. नाशी रसायन बनाने वाले कारखानों से होने वाले विसर्जन एवं उत्सर्जन सम्बन्धी मानकों का कड़ाई से पालन करें।
6. बीजोपचार में ट्राइकोडर्मा एवं जैविक विधियाँ काम में लें।
7. खरपतवार नाशियों के स्थान पर खरपतवारों से बचाव के उपायों पर ध्यान दें तथा समय–समय पर निराई गुड़ाई करें।
8. रोगों से बचाने हेतु रोगरोधी किस्मों का इस्तेमाल करें।
9. खाद्य पदार्थों में इन रसायनों का कम से कम उपयोग किया जाना चाहिए तथा इनके मानक निर्धारित हों।
10. प्रदूषण स्रोतों एवं औद्योगिक संस्थानों द्वारा होने वाले प्रदूषण तथा रोकथाम के तरीकों का समय–समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिए।
11. आमजन को कीटनाशक, रोगनाशकों, खरपतवारनाशी रसायनों के दुष्प्रभाव से सचेत रहने हेतु जन जागृति फैलायी जाये।
12. खतरनाक खरपतवार गाजर घास को उखाड़ कर जला दें।

सारणी : जहरीलेपन के अनुसार कृषि रसायनों का वर्गीकरण

क्र. सं.	जहर का प्रकार	रसायन का नाम	घातक मात्रा मि.ग्रा./कि.ग्रा.	
			मुंह से	त्वचा से
1.	अत्यधिक जहरीला 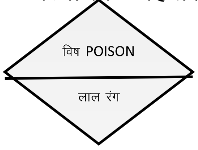	मोनोक्रोटोफॉस 36 SL (की.) फोरेट 10 G (की.) मिथाइल पैराथियॉन 50 EC (की.) मिथाईल पैराथियॉन 2% चूर्ण (की.)	1 से 5	1 से 200
2.	अधिक जहरीला	क्लोरोपायरीफॉस 20 EC (की.) इमिडाक्लोरोपिड 17.5 EC (की.) डाइक्लोरोवास 76 EC (की.) साइपरमेथ्रीन 25 EC (की.) फैनवलरेट 20 EC (की.)	51 से 500	201 से 2000
3.	मध्यम जहरीला 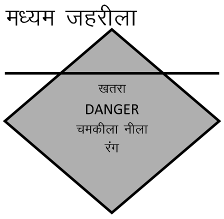	मेलाथियॉन 50 EC (की.) आइसोप्रोट्यूरॉन 75% WP (ख.) कार्बेन्डिज्म (फ.) कॉपर ऑकसीक्लोराइड (फ.)	501 से 5000	2001 से 20,000

AGRIGYAN.IN

4.	कम जहरीला 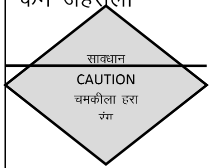	मैंकाजेब 75% WP (फ.) सल्फर 80% WP (फ.) एजेडिरेक्टिन 0.3% (की.) टेक्साकोनाजोन 5 EC (फ.)	5000 से अधिक	20000 से अधिक

(की.)– कीटनाशक, (फ.)– फफूंदनाशी, (ख.)– खरपतवारनाशी

पीड़कनाशकों के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि (Wating period of pecticides after its application)–

फसलों में कीटनाशक छिड़कने के बाद विशेष समय तक क्रियाशील रहते हैं, कुछ रसायन एक सप्ताह, कुछ दो सप्ताह और कुछ तीन या चार सप्ताह तक कीटों को मारने की क्षमता रखते हैं। फसलों / भोज्य पदार्थों में कीटनाशी की मात्रा सहनशीलता सीमा से नीचे रखने के लिए हरेक कीटनाशी के लिए प्रतीक्षा अवधि निश्चित की जाती है। 'अंतिम बार कीटनाशी छिड़कने के बाद और फसल काटने के बीच के कम से कम अवकाश को प्रतीक्षा अवधि कहते हैं।'

पीड़क नाशकों का प्रयोग सावधानी पूर्वक जहरीलेपन के अनुसार करें। फल एवं सब्जियों में पीड़कनाशियों के प्रयोग के पश्चात, निम्नलिखित प्रतीक्षा अवधि के पश्चात उपयोग में लेना चाहिए। यहां कुछ प्रमुख पीड़कनाशियों के नाम एवं उनकी औसतन प्रतीक्षा अवधि दी जा रही है। इस प्रतीक्षा अवधि के पश्चात प्रयोग करने से मानव स्वस्थ्य पर दुष्प्रभाव कम होता है –

सारणी–
पीड़कनाशियों के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि

क्र.सं.	रसायन का नाम		प्रतीक्षा अवधि
1.	इण्डोसल्फान	35 EC	10–12 दिन
2.	लिण्डेन		9 दिन
3.	मोनोक्रोटोफॉस	36 SL	10 दिन
4.	मेलाथियॉन	50 EC	5 दिन
5.	मिथाईल पैराथियॉन		10 दिन
6.	साइपरमेथ्रीन	25 EC	4 दिन
7.	फैनवलरेट	20 EC	9 दिन
8.	डाइमेथोएट	30 EC	15 दिन
9.	डाइक्लोरोवास	76 EC	7 दिन
10.	क्यूनॉलफॉस	25 EC	15 दिन
11.	एल्ड्रिन		10–20 दिन
12.	डाइएल्ड्रिन		20–30 दिन
13.	कार्बोरिल		8–10 दिन
14.	डी.डी.टी.		10–20 दिन
15.	डायजीनोन		12–50 दिन
16.	हेप्टाक्लोर		5–7 दिन
17.	फॉस्फोमिडोन		20–30 दिन
18.	फोरेट		25–30 दिन

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. किसी विषय के क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।
2. द्रव्य की संरचना तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों के अनुसंधान एवं सुव्यवस्थित ज्ञान को रसायन विज्ञान कहते हैं।
3. कृषि रसायन विज्ञान, रसायनिक विज्ञान की वह शाखा है जिसमें कृषि रसायनों, पीड़कनाशियों के विभिन्न गुणों, वर्गीकरण, संघटन, रसायनों का मृदा एवं पौधों में होने वाली क्रियाओं एवं अभिक्रियाओं का सुव्यवस्थित अध्ययन किया जाता है।
4. खेती में प्रयोग हो रहे कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से प्राकृतिक संसाधनों– भूमिगत जल, सतहीजल, मृदा, जीव–जन्तुओं और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, इसे प्रदूषण कहते हैं।
5. वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ताप प्रदूषण, भूमि प्रदूषण – पर्यावरणीय प्रदूषण के मुख्य प्रकार है।
6. कृषि में रासायनिक उर्वरकों एवं नाशी रसायनों द्वारा प्रदूषण सर्वाधिक होता है।
7. मानव शरीर में नाशी रसायनों के संचयन से कैंसर, सिरदर्द, चर्मरोग, एलर्जी, अन्धापन, आमाशय के रोग, यकृतरोग, कोलेस्ट्रोल इत्यादि बीमारियाँ होती है।
8. केन्द्रीय जल स्वास्थ्य इंजिनियरिंग अनुसंधान संस्थान के

AGRIGYAN.IN

अनुसार भारत में प्रति एक लाख व्यक्तियों में से 60 व्यक्तियों की मृत्यु प्रदूषित जल से फैलने वाले रोग टायफाइड, पेचिश, पीलिया से होती है।

9. कृषि रसायनों के सावधानीपूर्वक संतुलित उर्वरक, पौध संरक्षण मे समन्वित कीट प्रबन्धन, जैविक खाद का प्रयोग कर पर्यावरणीय प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

10. नाशी रसायनों के डिब्बों पर लाल रंग अत्यधिक जहरीला, पीला रंग अधिक जहरीला, नीला रंग मध्यम जहरीला, हरा रंग कम जहरीला प्रदर्शित करता है।

11. सब्जियों का प्रयोग कीटनाशी रसायनों की प्रतिक्षा अवधि के पश्चात् ही करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. किसी विषय के क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित ज्ञान को कहते हैं–
   (अ) विज्ञान (ब) सामान्य ज्ञान
   (स) गणित (द) अंग्रेजी

2. जिप्सम का उपयोग भूमि सुधार में किया जाता है–
   (अ) लवणीय (ब) क्षारीय
   (स) अम्लीय (द) कोई नहीं

3. फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों से फसलें फॉस्फोरस का उपयोग कर पाती हैं–
   (अ) 5–10 प्रतिशत (ब) 5–20 प्रतिशत
   (स) 5–30 प्रतिशत (द) 5–40 प्रतिशत

4. कृषि रसायनों से जल प्रदूषित होता है–
   (अ) वर्षा जल के साथ बहकर आने से
   (ब) अपक्षालन से
   (स) औद्योगिक संस्थानों के बहिःस्राव से
   (द) उपर्युक्त सभी से

5. सर्वाधिक जहरीले कृषि रसायनों के डिब्बों पर चेतावनी अंकित होती है–
   (अ) लाल रंग से (ब) पीले रंग से
   (स) नीले रंग से (द) हरे रंग से

6. संतुलित वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा होती है–
   (अ) 78 प्रतिशत (ब) 21 प्रतिशत
   (स) 16 प्रतिशत (द) 0.3 प्रतिशत

7. निम्न में से कौनसा मानवजन्य प्रदूषण नहीं है–
   (अ) जल प्रदूषण (ब) ध्वनि प्रदूषण
   (स) सामाजिक प्रदूषण (द) औद्योगिक प्रदूषण

8. जल प्रदूषण से जल में परिवर्तन होता है–
   (अ) जल के भौतिक गुणों में
   (ब) जल के रासायनिक गुणों में
   (स) जल के जैविक गुणों (द) इनमें सभी

9. वायु प्रदूषण का कारण है–
   (अ) वाहनों से उत्सर्जित गैस
   (ब) औद्योगिक कारखानों से उत्सर्जित गैस
   (स) पटाखों से उत्सर्जित गैस
   (द) इनमें से सभी

10. वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव है–
   (अ) कैंसर (ब) टॉन्सिल रोग
   (स) एलर्जी (द) इनमें से सभी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. जैविक कीटनाशक किसे कहते है ?
2. चूना से किस प्रकार की मृदाओं का सुधार किया जाता है ?
3. जहरीले कृषि रसायनों का मृदा के किन गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है ?
4. फसलें नाइट्रोजन का कितना प्रतिशत उपयोग कर पाती है ?
5. सिंगल सुपर फॉस्फेट उर्वरक में शीशा (Pb) एवं कैडमियम (Cd) की मात्रा पीपीएम में लिखिए।
6. फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों में पाये जाने वाले रेडियोएक्टिव पदार्थों के नाम लिखिए।
7. भारत में प्रति लाख व्यक्तियों में से कितने लोगों की मृत्यु प्रदूषित जल से जनित टाइफॉइड, पेचिश, पीलिया से होती है?
8. सबसे कम जहरीले कृषि रसायन के डिब्बे पर चेतावनी किस रंग से अंकित होती है ?
9. नाशी रसायनों के स्थान पर किस प्रकार के कीटनाशी रसायनों का प्रयोग करना चाहिए ?
10. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. कीटनाशक की प्रतीक्षा अवधि की परिभाषा लिखिए।
2. कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग का प्रतिकूल प्रभाव

AGRIGYAN.IN

किन–2 प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ रहा है ?

3. कृषि रसायनों का मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव लिखिए।
4. कृषि रसायनों के प्रदूषण से बचाव हेतु उर्वरक सम्बन्धी उपाय लिखिए।
5. कृषि रसायनों से बचाव हेतु भूमि प्रबन्धकीय सावधानियाँ लिखिए।
6. नाशकीय कृषि रसायनों के प्रतिकूल प्रभाव से बचाव के उपाय लिखिए।
7. नाइट्रेट वाले पदार्थ किस प्रकार प्रदूषण फैलाते हैं ?
8. जलाशयों का प्रदूषण किस प्रकार होता है?
9. रासायनिक उर्वरकों से भारी तत्त्व संचयन के प्रभाव को समझाइये।
10. पीड़कनाशकों के प्रयोग के पश्चात प्रतीक्षा अवधि को तालिका बनाकर लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. उर्वरकों द्वारा होने वाले प्रदूषण को विस्तार से समझाइये।
2. उर्वरकों के दुष्प्रभाव से बचाव हेतु विभिन्न उपायों का वर्णन कीजिए।
3. नाशी रसायनों द्वारा होने वाले प्रदूषण को विस्तार से समझाइये।
4. प्रदूषित जल के हानिकारक तत्त्व, स्रोत एवं सम्भावित रोग की तालिका बनाकर समझाइये।
5. जहरीलेपन के अनुसार कृषि रसायनों की वर्गीकरण तालिका उदाहरण सहित बनाइये।

उत्तरमाला–

1. (अ) 2.(ब) 3.(स) 4.(द) 5.(अ)
6. (ब) 7. (अ) 8. (द) 9. (द) 10. (द)

AGRIGYAN.IN